श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके

सभ्यगण और मुखपत्र।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीसे एक हिन्दी भाषाका और दूसरा अंग्रेजी भाषाका, इस प्रकार दो मासिक पत्र प्रकाशित होते हैं एवं श्रीमहामण्डलके अन्यान्य भाषाओंमें मुखपत्र श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय कार्य्यालयोंसे प्रकाशित होते हैं यथाः-कलकत्तेके कार्य्यालयसे बंगला भाषाका मुखपत्र, फ़िरोजपुर (पञ्जाब) के कार्य्यालयसे उर्दू भाषाका मुखपत्र और मेरठके कार्य्यालयसे हिन्दीभाषाका मुखपत्र।

श्रीमहामण्डलके पांच श्रेणीके सभ्य होते हैं, यथाः-स्वाधीन नरपति और प्रधान-प्रधान धर्म्माचार्य्यगण संरक्षक होते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंके बड़े बड़े ज़मींदार, सेठ, साहुकार आदि सामाजिक नेतागण उस उस प्रान्तके चुनावके द्वारा प्रतिनिधि सभ्य चुने जाते हैं। प्रत्येक प्रान्तके अध्यापक ब्राह्मणगणमेंसे उस उस प्रान्तीय मण्डलके द्वारा चुने जाकर धर्म्मव्यवस्थापक सभ्य बनाये जाते हैं। भारतवर्षके सब प्रान्तोंसे पांच प्रकारके सहायक सभ्य लिये जाते हैं, विद्यासम्बन्धी कार्य करनेवाले सहायक सभ्य, धर्म्म कार्य्य करनेवाले सहायक सभ्य, महामण्डल, प्रान्तीयमण्डल और शाखासभाओंको धनदान करनेवाले सहायकसभ्य, विद्यादान करने वाले विद्वान् ब्राह्मण सहायक सभ्य और धर्म्मप्रचार करनेवाले साधु संन्यासी सहायक सभ्य। पाँचवीं श्रेणीके सभ्य साधारण सभ्य होते हैं जो हिन्दुमात्र हो सकते हैं। हिन्दु-कुलकामिनीगण केवल प्रथम तीन श्रेणीकी सहायक-सभ्या और साधारण-सभ्या हो सकती हैं। इन सब प्रकारके सभ्यों और श्रीमहामण्डलके प्रान्तीय मण्डल, शाखा सभा और संयुक्त सभाओंको श्रीमहामण्डलका हिन्दी अथवा अंग्रेजी भाषाका मासिकपत्र विना मूल्य दिया जाता है। नियमितरूपसे नियत वार्षिक चन्दा २) दो रुपये देनेपर हिन्दू नर नारी साधारण सभ्य हो सकते हैं। साधारण सभ्योंको विना मूल्य मासिकपत्रिका के अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारियोंको समाजहितकारी कोषके द्वारा विशेष लाभ मिलता है।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, प्रधानकार्य्यालय। जगत्गंज, बनारस।

ॐ तत्सत् ।

श्रीगुरुगीता

भाषानुवाद और टिप्पणी एवं भूमिका सहित ।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल के शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा
श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णादानभंडार
के लिये प्रकाशित ।

काशी

तृतीयावृत्ति ।

बी० एल्० पावगी द्वारा
हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, बनारस सिटी
में मुद्रित ।

सन् १९२० ईस्वी ।

मूल्य ।) चार आना

श्रीमहामण्डलके प्रधान पदधारिगण।

प्रधान सभापतिः—

श्रीमान् महाराजा बहादुर दरभंगा।

सभापति प्रतिनिधिसभाः—

श्रीमान् महाराजा बहादुर काश्मीर।

उपसभापति प्रतिनिधिसभाः—

श्रीमान् महाराजा बहादुर टीकमगढ़।

प्रधान मंत्री प्रतिनिधि सभाः—

श्रीमान् आनरेबल के. भी. रंगस्वामी आयङ्गर जमीन्दार श्रीरंगम्।

सभापति मन्त्रीसभाः—

श्रीमान् महाराजा बहादुर गिद्धौड़।

प्रधानाध्यक्षः—

श्रीमान् पण्डित रामचन्द्र नायक कालिया
जमीन्दार और आनरेरी मेजिष्ट्रेट बनारस।

अन्यान्य समाचार जाननेका पता—

जनरल सैक्रेटरी।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, महामण्डलभवन,

जगत्गंज, बनारस।

सूचना।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डलसे सम्बन्धयुक्त आर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्, आर्य्यमहिला पत्रिका, आर्य्यमहिला महाविद्यालय, उपदेशक महाविद्यालय, समाजहितकारी कोष, महामण्डल मेगज़ीन (अंग्रेजी), निगमागमचन्द्रिका, निगमागम बुक्डिपो, श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णा दानभण्डार, शास्त्रप्रकाशक विभाग, एरियन ब्यरो आदि विभागोंसे तथा श्रीभारतधर्म्म महामण्डलसे पत्र व्यवहार करनेका पताः—

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल प्रधान कार्य्यालय,

महामण्डल भवन जगत्गंज, बनारस।

ओं तत्सत्

श्रीगुरुगीता

विज्ञापन।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय काशीधामके शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा अब तक अप्रकाशित छः गीताओं का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन होकर हिन्दी साहित्य भण्डार और साथही साथ सनातनधर्म्म ग्रन्थभण्डारकी श्रीवृद्धि हुई है। इससे पहले श्रीसंन्यास गीता सब प्रकारके संन्यासी और साधुसम्प्रदायों के लिये, सौर्य्य सम्प्रदायके लिये श्रीसूर्य्यगीता, वैष्णवसम्प्रदायके लिये श्रीविष्णुगीता, शाक्तसम्प्रदायके लिये श्रीशक्तिगीता, गाणपत्य सम्प्रदायके लिये श्रीधीशगीता और शैवसम्प्रदायके लिये श्रीशम्भुगीता हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित की गई है। अब यह श्रीगुरुगीता जैसी अब तक कभी प्रकाशित नहीं हुई थी हिन्दी अनुवाद सहित तृतीयवार प्रकाशित की जाती है।

सर्वव्यापक, सर्वजीवहितकारी और पृथिवी के सब धर्मों के पितारूप सनातन-धर्म में निर्गुण और सगुण उपासनारूप से प्रधान दो भेद हैं। यद्यपि लीलाविग्रह अर्थात् अवतार-उपासना, ऋषि देवता पितृ-उपासना और क्षुद्र तामसिक शक्तियों की उपासनारूप से सनातन धर्ममें सब अधिकारके उपासकवृन्दके लिये और भी कई उपासनाशैलियोंका विस्तारित वर्णन पाया जाता है; परन्तु लीलाविग्रह उपासना अर्थात् अवतार उपासना तो पञ्च सगुण उपासनाके अन्तर्गत ही है। श्रीविष्णुभगवान्, श्रीसूर्य्यभगवान्, श्रीभगवती देवी, श्रीगणेशभगवान् और श्रीसदा-शिव भगवान्, इन पञ्च सगुण उपास्य देवताओंमें सबके ही अवतारों का वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है; क्योंकि सगुण उपासनाकी पूर्णताका लीलामय स्वरूप के विना उपासक अनुभव नहीं कर सकता। अस्तु, लीलाविग्रहकी उपासना सगुण उपासनाकी पूर्णता के लिये ही होती है तथा ऋषि देव पितृ-उपासना और अन्य क्षुद्र उपासनाका अधिकार सकाम राज्यसे ही सम्बन्ध रखता है।

निर्गुण उपासना में सर्व साधारणका अधिकार होही नहीं सकता। निर्गुण उपा-सना अरूप, भावातीत, वाक् मन और बुद्धिसे अगोचर आत्मस्वरूपकी उपासना है। निर्गुण उपासना केवल आत्मज्ञान-प्राप्त तत्त्वज्ञानी महापुरुषों तथा जीवन्मुक्त संन्या-सियोंके लिये ही उपयोगी समझी जासकती है और केवल सगुण उपासनाही सब श्रेणी के उत्तम उपासकवृन्दके लिये हितकारी समझकर पूज्यपाद महर्षियों ने उसके सिद्धान्तों का अधिक प्रचार शास्त्रों में किया है। सृष्टि के स्वाभाविक पञ्च तत्त्वों के अनुसार पञ्च विभागों पर संयम करके पञ्च उपासक सम्प्रदाय के भेद कल्पना करते हुए पूर्वाचार्यों ने पञ्च सगुण उपासनाप्रणाली प्रचलित की है। विष्णु उपासकके लिये वैष्णव सम्प्रदायप्रणाली, सूर्य्य उपासक के लिये सौर्यसम्प्रदाय प्रणाली, शक्ति उपासक के लिये शाक्त सम्प्रदाय प्रणाली, गणपति उपासक के लिये गाणपत्यसम्प्रदाय

प्रणाली और शिव उपासक के लिये शैवसम्प्रदाय प्रणाली उन्होंने विस्तारित रूप से नाना शास्त्रों में वर्णन की है। प्रत्येक उपासक सम्प्रदाय के उपयोगी अनेक आर्षसंहिताएं और अनेक तन्त्र ग्रन्थ आदि पाये जाते हैं, यहां तक कि प्रत्येक सम्प्रदाय के उपयोगी उपनिषद् भी प्राप्त होते हैं। उसी शैली के अनुसार प्रत्येक सम्प्रदायके उपासक के लिये अपने अपने सम्प्रदायके प्रत्येक पचाङ्ग ग्रन्थ हैं। अपने अपने सम्प्रदायके पंचाङ्ग ग्रन्थों में से अपने अपने सम्प्रदायका गीताग्रन्थ सबसे प्रधान माना गया है। विष्णुसम्प्रदायकी श्रीविष्णुगीता, सूर्य्य सम्प्रदायकी श्रीसूर्य्यगीता, देवीसम्प्रदाय की श्रीशक्तिगीता, गणपतिसम्प्रदायकी श्रीधीशगीता और शिवसम्प्रदायकी श्रीशम्भुगीता, ये पांचों ग्रन्थ अति अपूर्व उपनिषद् रूपी हैं। इन पांचों ग्रन्थरत्नोंका प्रकाशन अभी तक ठीक ठीक नहीं था। यद्यपि देवीगीता और गणेशगीता नाम से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं तो वे असम्पूर्ण दशामें प्रकाशित हुए हैं। श्रीभारतधर्म्म महामण्डल के शास्त्रप्रकाश विभाग तथा अनुसन्धान विभाग द्वारा पांचों ग्रन्थरत्न अपने सम्पूर्ण आकार में प्राप्त हुए हैं। ये पाँचों गीताएँ वेदविज्ञान, सनातनधर्म के अपूर्व रहस्य, गभीर अध्यात्म तत्त्व और पूज्यपाद महर्षियों के ज्ञानगरिमाके सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं, इन पांचों के पाठ करने से पाठक बहुत कुछ ज्ञान लाभ कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्म तथा उसकी उपासना का रहस्य, सगुण उपासना का महत्त्व और विज्ञान, वेद के कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का मर्म, सनातनधर्म के सब गभीर सिद्धान्तों का निर्णय, अध्यात्मतत्त्व अधिदैवतत्त्व और अधिभूततत्त्व, यहां तक कि वेदका सार सब कुछ इन पञ्च गीताओं में प्राप्त होता है। ज्ञानकाण्डका विघ्न जिस प्रकार अहङ्कार है, उपासनाकाण्ड का विघ्न जिस प्रकार साम्प्रदायिक विरोध है उसी प्रकार कर्म्मकाण्ड का विघ्न दम्भ है। कर्म्मकाण्डी इनका पाठ करनेसे अपने दम्भको भूलकर भक्त बन जाएंगे, उपासकगण अपने क्षुद्राशय और साम्प्रदायिकविरोधको भूलकर उदार और पराभक्तिके अधिकारी बन सकेंगे और तत्त्वज्ञानी के लिये तो ये पांचों ग्रन्थ उपनिषदों के सार रूप हैं। गृहस्थों के लिये ये पांच गीताएं परम मङ्गलकर और सन्यासियों के लिये अध्यात्मपथप्रदर्शक हैं। जिस प्रकार सन्न्यासगीता प्रधानतः सकल सम्प्रदायके साधुसन्यासियों के हितार्थ प्रकाशित की गई; उसी प्रकार यह श्रीगुरुगीता भी सकल प्रकारके साधकोंके हितार्थ प्रकाशित हुई है इसके द्वारा चारों आश्रमकोंके साधक वृन्द समानरूप से लाभ उठावेंगे।

श्रीभारतधर्म महामण्डलके शास्त्रप्रकाश विभागके अन्य ग्रन्थों के अनुसार इस ग्रन्थरत्नका सत्त्वाधिकार दीन-दरिद्रों के भरणपोषणार्थ श्रीविश्वनाथ अन्नपूर्णादान भण्डार को दिया गया है। इस ग्रन्थके इस संस्करणके छापनेका व्यय खैरीगढ़ राज्येश्वरी श्रीभारतधर्म्मलक्ष्मी महाराणी सुरथकुमारी देवी के. एच. ओ. बी. ई. महोदयाने प्रदान किया है। श्रीगुरु देव उनको नीरोग और दीर्घायु करें। विज्ञापनमिति ।

श्री काशी धाम
विजया दशमी
संवत् १९७७ विक्रमी } विवेकानन्द ।

श्रीगुरवे नमः ।

श्रीगुरुगीता
की
विषयानुक्रमणिका ।

महादेवीकी जिज्ञासा ।

श्रीगुरवे नमः

श्रीगुरुगीता

भूमिका।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

सनातन कालसे गुरुदीक्षाकी रीति इस पवित्र भूमिमें प्रचलित है। शास्त्रोंमें ऐसा कथित है कि जैसे पाषाणपर बीज बोनेसे बीज अंकुरित नहीं होता वैसे ही बिना गुरुदीक्षाके साधन करने से कदापि आध्यात्मिक उन्नति नहीं होसक्ती। थोड़ेसे ही विचार करनेसे शास्त्रोक्त इस महावाक्य का सिद्धान्त हो सक्ता है। जबसे शिशुमें ज्ञान अंकुरित होता है, उसके अनन्तर जैसे जैसे उसके ज्ञान की वृद्धि होती जाती है, वह वृद्धि औरों के उपदेश से ही होती है; अर्थात् जैसे जैसे उस शिशुको उसके माता पिता प्रतिपालक वा विद्यागुरुगण उपदेश द्वारा जैसी जैसी शिक्षा देते जाते हैं वैसे ही उस बालकमें ज्ञानकी स्फूर्त्ति होती जाती है। अब देखिये कि वे उपदेशकगण उस शिशु के शिक्षा गुरु हैं, क्योंकि उन उपदेशोंकी सहायताके बिना उस बालकको किसी प्रकारसे ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होसक्ती थी। मन बुद्धि और इन्द्रिय आदि जबतक किसी प्रबल शक्ति से उत्तेजित, आकृष्ट वा चालित न किये जायँ तब तक ये कोई काम नहीं करसकते। अब जिस शक्ति द्वारा हम लोग उन्नतिकी ओर फिराये जाते हैं वही शक्ति हमारे गुरु हैं। चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रादि जिस महाशक्ति के इङ्गितमात्रसे अपने

कार्यपर लगे रहते हैं, वही जगत्की महाशक्ति जगद्गुरु हैं। इन्हीं जगद्गुरुके जाननेके लिये जब जीवका मन व्याकुल होता है, उस व्याकुलताको दूर करके इस घोर मायामय अन्धकार-पूर्ण संसार-पथको जो तत्त्वज्ञानी महापुरुष उपदेशरूप दीपक द्वारा सुगम कर देते हैं वही दीक्षागुरु हैं। अब विचार द्वारा यह प्रतिपन्न हुआ कि बिना दूसरेके उपदेशके जीव कुछ भी ज्ञान लाभ नहीं कर सकता; चाहे सांसारिक ज्ञान हो, चाहे आध्यात्मिक ज्ञान हो, बिना गुरु-उपदेशके किसी प्रकारका ज्ञान लाभ नहीं होसकता।

शिक्षाके भेदसे शास्त्रमें दो प्रकारके गुरु लिखे हैं; अर्थात् शिक्षागुरु और दीक्षागुरु। माता, पिता, आचार्य्यादि जो कोई सांसारिक ज्ञानकी वृद्धि करनेमें सहायता करें वे शिक्षागुरु हैं; अर्थात् एक कीटसे लेकर समस्त ब्रह्माण्ड ही शिक्षागुरु होसकता है; परन्तु दीक्षागुरु वे ही होसकते हैं कि जिन्होंने जीवकी व्याकुलता देख कृपा कर आत्मोन्नति का पथ उसको दिखाया हो।

गुरुदीक्षा वर्णन करते समय आर्य्य-शास्त्रोंने आज्ञा दी है कि दीक्षासे पहिले श्रीगुरुदेव शिष्यकी न्यूनसे न्यून छः मास अथवा वर्ष काल पर्यन्त परीक्षा करलेवें और परस्परमें प्रीति तथा भक्ति होनेपर यदि गुरुदेव शिष्यको उपयुक्त समझें तो दीक्षा दान करें। और यह भी लिखा है कि शास्त्रविधिसे यदि शिष्यकी दीक्षा होगी तो अवश्य ही उस जिज्ञासुका कल्याण होगा इसमें सन्देह-मात्र नहीं; परन्तु शास्त्रोंने यह भी आज्ञा दी है कि श्री गुरुदेव की शक्ति का पार नहीं; वे यदि इच्छा करें तो चाहे जैसा अधिकारी हो, चाहे जैसा देश काल पात्र हो, चाहे शिष्यकी परीक्षा करें वा न करें, वे सब समयमें, सब देशमें दीक्षा द्वारा शिष्यका कल्याण करसकते हैं। ग्रन्थोक्त गुरु-लक्षण तथा शिष्य-लक्षणके पाठ करनेसे जिज्ञासुगणके हृदयमें प्रश्न उठसकता है कि यदिच परमज्ञानी श्रीगुरुदेव शिष्यके उन लक्षणोंके द्वारा शिष्यको पहिचान सके हैं परन्तु अल्पज्ञानी शिष्य कैसे सब समयमें एकाएक सद्गुरु को पहिचाननेमें समर्थ होसकता है। इस प्रकारके सन्देहोंके उत्तरमें यह कहा जासकता है कि यदिच शिष्य अल्पज्ञानी होता है तत्रच ज्ञानरूपी चैतन्य का प्रकाश सब जीवोंमें ही स्थित है, विशेषतः मनुष्य-

गणमें इस प्रकाशकी श्रेष्ठता बुद्धिरूपसे प्रकट है, इस कारणसे ही मनुष्य सब जीवोंमें श्रेष्ठ और अपने सत् असत् कर्म्मोंका दायित्व (जिम्मेवारी) रखनेवाला है; अर्थात् अनन्त प्राणियोंमें एकमात्र मनुष्ययोनिवाले ही अपने किये हुए सदसत्कर्म्मोंका फल पाया करते हैं; अन्य प्राणिगण प्रकृतिके अधीन होकर कार्य्य करते हैं इस कारण वे अपने किये हुए कर्म्मोंका फल नहीं पाते। मनुष्य अपनी बुद्धिके आधीन होकर कार्य्य करता है इस कारणसे वह अपने कियेहुए सत् अथवा असत् कर्म्मके बन्धनमें आ जाता है। यह बुद्धिकी स्वाधीनता सब प्रकारके मनुष्योंमें ही सब समयमें न्यूनाधिक रहती है, इस कारण शास्त्रने आज्ञा दी है कि जिज्ञासुको भी उचित है कि अपनी बुद्धिके अनुसार अन्योक्त लक्षणोंको मिलाकर गुरु का अन्वेषण करे।

जितने प्रकारके धर्म्म-सम्प्रदाय इस संसारमें देखनेमें आते हैं उन सबमें ही गुरुदीक्षाकी रीति अल्प अथवा अधिक रूपसे पाई जाती है। चाहे मुहम्मदीय धर्म्मके शरीअत, तरीक़त, मारफ़त और हक़ीक़त अधिकार हों, चाहे ईसाई धर्म्मके रोमन कैथलिक, ग्रीकचर्च अथवा प्रोटस्टन्ट सम्प्रदाय हों, चाहे जैनधर्म्मके श्वेताम्बरी और दिगम्बरी आदि मतान्तर हों, चाहे बौद्धधर्म्मके उत्तर और दक्षिण आम्नाय हों, सब धर्म्म-सम्प्रदायोंमें ही गुरुदीक्षा-ग्रहणकी रीति अल्प अथवा अधिकरूपेण प्रचलित है। सब धर्म्म-मार्ग एकवाक्य होकर गुरुदीक्षाग्रहण करने में आज्ञा करते हैं; परन्तु भेद इतना ही है कि अभ्रान्त वेद-प्रकाशित सनातन धर्म्ममें जिस प्रकारसे गुरुकी महिमा और आध्यात्मिक उन्नति करनेमें गुरु-दीक्षाकी आवश्यकताको विस्तृत और दृढ़ रूप से वर्णन किया गया है; उस प्रकार वैज्ञानिक भावपूर्ण वर्णन और कहीं देखनेमें नहीं आता। वेदका यही आशय है कि जीव अपने कर्म्मके अनुसार आवागमन चक्रमें सत् असत् फल भोग किया करता है, परन्तु कर्म्म स्वयं जड़ होने के कारण वे अपने आप फलकी उत्पत्ति नहीं करसक्ते; जगत्कर्त्ता, जगत्पिता, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही अपनी महाशक्ति द्वारा उन कर्म्मोंके अनुसार जीवको सत् असत् फल प्रदान किया करते हैं। यद्यपि, फलकी प्राप्तिमें निज कर्म्म ही

कारणरूप हैं, तत्रच ईश्वर-शक्तिके विना कर्म्म-समूह अपने फल उत्पन्न नहीं करसकते। इसी शैलीके अनुसार आध्यात्मिक उन्नति करते समय भी मनुष्यको ऐश्वरीय शक्तिकी सहायता लेनी पड़ेगी; परन्तु ईश्वर कुछ स्वयं मूर्त्तिमान् होकर जीवको फलदान नहीं किया करते, जिस प्रकार परोक्ष रीति पर जगत्पिता परमात्मा जगत्के सारे कार्य्य चलवा रहे हैं; उसी प्रकारकी रीति पर वे अपने जीवरूप अनन्त केन्द्रोंमेंसे किसी श्रेष्ठ पुरुषके केन्द्र-स्थित होकर गुरुरूपसे जिज्ञासुका कल्याण करके उसको निम्नतर आध्यत्मिक भूमिसे उच्चतर आध्यात्मिक भूमिमें पहुँचा दिया करते हैं। इस महाकार्य्यमें, इस जीव-हितकारी प्रधान कर्म्ममें, ईश्वर कारण भूमि और श्रीगुरुमूर्त्ति कार्य्य-भूमि हैं, इसमें सन्देहमात्र नहीं और इसी कारणसे गुरुदीक्षा और श्रीगुरुमाहात्म्यकी इतनी महिमा आर्य्यशास्त्रोंने गाई है।

यद्यिच गुरुदीक्षाकी रीति प्राचीन भारतमें बहुत ही प्रचलित थी, तत्रच अब भी इस पवित्र भूमिमें कहीं कहीं, गुरुदीक्षाकी यथार्थ रीति स्वल्परूपेण प्रचलित है; किन्तु विशेषतः यह रीति लुप्त ही होगई है और कहीं कहीं यह पवित्र रीति स्वार्थ-परतामें मिलकर कुरीतिमें परिणत होगई है। अधिकतर ऐसा ही देखनेमें आता है कि शिष्यमें गुरुभक्ति कुछ भी नहीं रही, गृहस्थोंमें जैसे नाई धोबी आदि गृहस्थ-सेवक हुआ करते हैं वैसे ही गुरु भी एक समझे जाते हैं; जब कभी गुरुवंशके कोई आ जाते हैं तब उनकी वर्त्तमान हीन अवस्थाके अनुसार यत्किञ्चित् कुछ देकर उनको विदा करदेते हैं और उनसे पुनः अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखते अथवा उनको अपने घरमें रखकर उनसे गृहस्थ सेवकोंका कार्य्य लिया करते हैं। यद्यपि अधिक दोष इस समयमें शिष्योंका ही है क्योंकि वे न तो अपने आप आध्यात्मिक उन्नतिके लिये प्रयत्न करते हैं और न गुरुसेवाकी कुछ आवश्यकता समझते हैं; तत्रच इस समयके शिष्योंका ही केवल दोष नहीं कहा जासकता, गुरुगणने भी अपनी मर्यादाको त्याग कर दिया है और दीक्षा देना उदरपूर्त्ति करनेका एक व्यवसाय मान लिया है। कहीं कहीं यह स्वार्थपरता इतनी बढ़गई है कि प्रतिष्ठित गुरुवंशके निकट जब शिष्य-

गण दीक्षाके लिये एकत्रित होते हैं तो उन सबोंको पशुदलकी नाईं एकसङ्ग बिठाकर और सबोंको एक ही मन्त्र सुनाकर तथा उनसे अपना वात्सरिक 'कर' ठहराकर उनको विदा करदेते हैं। इसी प्रकारसे अविद्याके कारण गुरु और शिष्य उभय सम्प्रदायमें ही घोर कुरीति आज दिन इस पवित्र भूमिमें व्याप्त हो रही है।

इस कराल कालप्रभाव पर ही दृष्टि करके देवादिदेव महादेवजी ने श्रीपार्वतीजीसे कहा था कि—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः ।
दुर्लभस्सद्गुरुर्देवि ! शिष्यसन्तापहारकः ॥

हे देवि ! कलियुगमें शिष्यका धन हरणकरनेवाले गुरु बहुत होंगे परन्तु शिष्यके सन्तापहारी गुरु दुर्लभ होंगे। आर्यजातिकी अब वर्त्तमान अवस्था कुछ ही हो, परन्तु विचारवान् पुरुषोंका यह विश्वास है कि यदि शिष्य अपने आपको उपयुक्त करले और त्रिताप के नाश करनेकी इच्छा उसमें प्रबल हुई हो तो निःसन्देह उसको सद्गुरुके दर्शन होंगे। जब यह स्थिर सिद्धान्त है कि गुरु-उपदेशके मूलमें श्रीभगवान् हैं, तब गुरुदीक्षा द्वारा कल्याण प्राप्ति-के विषय में कोई सन्देह ही नहीं होसक्ता; परन्तु भेद इतना ही है कि शिष्य जैसा अधिकारी होगा उसी अधिकारका गुरु उपदेश उसको प्राप्त होगा। शिष्यमें जितना संसार-वैराग्य होगा और वह जिस आध्यात्मिक भूमिमें स्थित होगा, उतनीही उपकारिता गुरु-उपदेश द्वारा उस को प्राप्त होगी। यदि शिष्य अपने आपको पहले उपयोगी करके जिज्ञासु बने, पीछे सद्गुरु अन्वेषण करे तो ईश्वरभाव पूर्ण इस विस्तृत संसारमें उसको सद्गुरु के अवश्य दर्शन होंगे इसमें संशय कुछ भी नहीं है।

गुरुदीक्षाकी आवश्यकताके विषयमें वेद तथा वेदसम्मत दर्शन, उपवेद, स्मृति, पुराण और तन्त्र आदि सब शास्त्र ही एक-वाक्य होकर कहते हैं, सब श्रुति तथा महर्षि-वाक्योंका यही सिद्धा-न्त है कि गुरुदीक्षा विना आध्यात्मिक उन्नतिके इच्छुक जिज्ञासु-का कदापि कल्याण नहीं होसक्ता। जितने प्रकारके सम्प्रदाय सनातनधर्म्म समाजमें स्थित हैं वे सब ही प्रथम गुरुदीक्षा ग्रहण

करनेकी आवश्यकता मानते हैं; चाहे भक्ति-मार्ग हो, चाहे ज्ञान-मार्ग हो, चाहे कर्म्म-काण्डी हो, चाहे ज्ञान-काण्डी हो, सब सम्प्रदाय ही एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं कि प्रथम-गुरुदीक्षा ग्रहण करके तत्पश्चात् साधनमें प्रवृत्त होना उचित है। वैष्णव, सौर्य्य, शाक्त, गाणपत्य तथा शैव, सब उपासक सम्प्रदाय ही स्थिर निश्चय करके यही उपदेश देते हैं कि गुरुदीक्षा विना सब प्रकार का साधन विफल होता है। इसी प्रकार मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इन साधनचतुष्टयके सब आचार्यगण ही ने मुक्तकण्ठ होकर साधन वर्णन करते समय यही कहा है कि विना गुरुदीक्षाग्रहण, विना गुरुसेवा, विना गुरुसङ्ग, विना गुरु-आज्ञापालन और विना गुरुउपदेश-अनुसार साधन के कोई मुमुक्षु भी अपना कल्याण साधन नहीं करसका है। प्रथम गुरुसेवा, तत्पश्चात् गुरु कृपा प्राप्ति, तत्पश्चात् गुरुदीक्षाग्रहण, तत्पश्चात् साधन-अभ्यास, क्रमशः इसी शैली के अनुसार जिज्ञासु आध्यात्मिक भूमिमें अग्रसर होता हुआ परम कल्याणरूपी मुक्तिपदको प्राप्तकरलेता है। गुरु ही मुख्य हैं।

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।
शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः शिवशासनतः॥

इति श्रीगुरुगीता भूमिका।

श्री तत्सत् ।

श्रीमद्गुरुचरणकमलेभ्यो नमः ॥



श्रीगुरुगीता

भाषानुवादटिप्पणीसहिता ।

ऋषय ऊचुः ।

गुह्याद्गुह्यतरा विद्या गुरुगीता विशेषतः ।
ब्रूहि नः सूत ! कृपया शृणुमस्त्वत्प्रसादतः ॥ १ ॥*

ऋषिगण बोले ।

हे सूत ! धर्म्म दुर्ज्ञेय है, विशेषतः गुरुगीता विद्या सब विद्याओं-से अतिदुर्ज्ञेय हैं, आपकी कृपासे हम उसको श्रवण करना चाहते हैं इस कारण उसका वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

* तीर्थप्रधान नैमिषारण्य तीर्थमें महर्षिगण प्रायः ही एकत्रित होकर धर्म्म-जिज्ञासा, धर्म्म-विचार और जीवगणके हितार्थ धर्म्मप्रचार किया करते थे । इस प्रसङ्गसे गुरुगीताका भी प्रचार हुआ है । गुरु बिना किसी प्रकार के ज्ञानकी प्राप्ति नहीं होसक्ती, इस संसारमें श्रीगुरुदेवसे अधिक कोई भी नहीं है, इस कारण महर्षिगणने ऐसे सम्मानित और प्रशंसायुक्त वाक्य द्वारा सूतसे गुरुगीताविषयक प्रश्न किया है ।

सूत उवाच ।

गिरीन्द्रशिखरे रम्ये नानारत्नोपशोभिते ।
नानावृक्षलताकीर्णे नानापक्षिरवैर्युते ॥ २ ॥
सर्वर्त्तुकुसुमामोदमोदिते सुमनोहरे ।
शैत्यसौगन्ध्यमान्द्याढ्यमरुद्भिरुपवीजिते ॥ ३ ॥ *
अप्सरोगणसङ्गीतकलध्वनिनिनादिते ।

सूत बोले ।

कैलास पर्वतका शिखर अतिरमणीय स्थान है । वह स्थान नाना मणि रत्न आदियोंसे युक्त होकर अपूर्व शोभाको धारण करता है, बहुप्रकारके वृक्ष और लतासमूहसे वेष्टित है जिनमें अगणित विहङ्गमगण गान किया करते हैं । ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त इन छःहों ऋतुओंमें जिस जिस प्रकार के उत्तम पुष्प खिला करते हैं वे सब ही इस मनोहर पर्वतमें सब समय प्रस्फुटित होकर मन-आनन्दकारी सुगन्धि विस्तार किया करते हैं । मन्द सुगन्ध और शीतल-गुणधारी वसन्त-पवन सदा प्रवाहित होकर व्यजनकारीका कार्य्य किया करता है ॥ २-३ ॥ ऐसी अपूर्व भूमिको पाकर अप्सरा और गन्धर्वगण सदा गान,

* महामाया उमाके पति प्रकृतिजयकारी सदाशिव के कैलाशलोकमें प्रकृतिमाता सदा पूर्णताको धारण करके उनकी सेवा करेंगी यह निश्चय ही है । जिन देवादिदेव महादेवने अपने तपःप्रभावसे त्रिलोकमुग्धकारी कामको सदा जय कर रक्खा है उनके लोकमें काम-सेवक ऋतुगण सदा आज्ञाकारी रहेंगे इसमें विचित्रता होही नहीं सक्ती । तरलतरङ्गिणी पतितपावनी गङ्गा सदा एक ही भावसे कैलाश पर्वतमें शिवके आनन्द-वर्द्धनार्थ बह रही हैं, इस कारण वहांकी वायु शीतल है, उस पवित्र सुरनदी के अपूर्व प्रभावसे उसके तट पर नाना प्रकार के स्वर्गीय कनक चम्पक पारिजात आदि और जल में कनकपद्म और रजतकुमुद आदि दिव्य पुष्प नित्य विकसित रहते हैं, इस कारण वहांकी वायु सुगन्धियुक्त है और उस देवनदीके दोनों तीर पर उनकी अद्भुत शक्तिके कारण नाना प्रकारके देवदारु तथा मन्दार, चन्दन, कल्पवृक्ष आदि रहनेके कारण उनके मध्यमें वायु बहती हुई स्वतःही मन्दगुणको धारण कर लेती है ।

स्थिरच्छायाद्रुमच्छायाच्छादिते स्निग्धमञ्जुले ॥ ४ ॥
मत्तकोकिलसंदोहसंघुष्टविपिनान्तरे ।
सर्वदा स्वगणैः सार्द्धमृतुराजनिषेविते ॥ ५ ॥
सिद्धचारणगन्धर्वगाणपत्यगणैर्वृते ।
तत्र मौनधरं देवं चराचरजगद्गुरुम् ॥ ६ ॥
सदाशिवं सदानन्दं करुणाऽमृतसागरम् ।
कर्पूरकुन्दधवलं शुद्धतत्त्वमयं विभुम् ॥ ७ ॥
दिगम्बरं दीननाथं योगीन्द्रं योगिवल्लभम् ।

वाद्य और नृत्यरूपी त्रिविद्यामें उन्मत्त रहते हैं और उस मधुर सङ्गीतकी ध्वनि प्रतिध्वनिसे वह पर्वत निनादित होता रहता है। उस स्थानकी वह स्वर्गीय वृक्ष-छाया सदा स्थिर भावसे रहती है अर्थात् छओं ऋतुओंके बदलसे वृक्ष-पत्रोंके बदल होनेपर जैसे और वृक्षोंमें छायाकी न्यूनता होजाती है वहां वैसा नहीं होता, इस कारण ऐसी स्थिर छाया-युक्त वृक्षोंकी छायासे वह स्थान सदा सुन्दर और शीतल होरहा है। ऐसे सुन्दर भावको देखकर वहां कोकिल सदा प्रमत्त होकर गुंजारता हुआ फिरा करता है। वहाँ सब समय में ऋतुओंका राजा वसन्त अपने अनुचरगणको साथ लेकर विराजमान रहता है और वहां सिद्ध, चारण, गन्धर्व, गाणपत्य आदि शिवसेवकगण सदा निवास किया करते हैं। वहां एक दिन आशुतोष नित्यानन्दमय चराचर विश्वके एकमात्र गुरु श्रीमहादेव मौनभावको धारण करके बैठे हुए हैं। वे करुणारूप अमृतके सागर, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल इन तीनों लोकोंके अधीश्वर, शुद्ध आत्मज्ञानमय, दीनजनोंके पवित्रकर्त्ता, नित्य मङ्गलदाता, सब जीवोंमें समान दृष्टि रखनेवाले, योगिगणमें श्रेष्ठ और योगिगणके परमप्रिय प्रभु हैं। उनका शरीर कर्पूर, स्फटिक और कुन्दपुष्पके नाईं लावण्य-युक्त है, जिस पर भस्मसे भूषित होकर और भी शोभाको प्राप्त हुआ है, वे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र आभरण रहित हैं, उनके

गङ्गाशीकरसंसिक्तजटामण्डलमण्डितम् ॥ ८ ॥
विभूतिभूषितं शान्तं व्यालमालं कपालिनम् ।
अन्धकारिं त्रिलोकेशं त्रिशूलवरधारकम् ॥ ९ ॥
आशुतोषं ज्ञानमयं कैवल्यफलदायकम् ।
निर्विकल्पं निरातङ्कं निर्विशेषं निरञ्जनम् ॥ १० ॥
सर्वेषां हितकर्त्तारं देवदेवं निरामयम् ।
कैलासशिखरासीनं पञ्चवक्त्रं सुभूषितम् ॥ ११ ॥
सर्वात्मनाविष्टचित्तं गिरिजामुखपङ्कजे ।
प्रणम्य परया भक्त्या कृताञ्जलिपुटा सती ॥ १२ ॥
प्रसन्नवदनं वीक्ष्य लोकानां हितकाम्यया ।
विनयाऽवनता देवी पार्वती शिवमब्रवीत् ॥ १३ ॥

श्रीमहादेव्युवाच ।

नमस्ते देवदेवेश ! सदाशिव ! जगद्गुरो ! ।
प्राणेश्वर ! महादेव ! गुरुगीतां वद प्रभो ! ॥ १४ ॥

मस्तक में जटाएँ लटपटाय रही हैं, जिनमें होकर गंगादेवी अपनी लहर विस्तार कररही हैं, उनके गलेमें सर्पकी माला शोभायमान है, मस्तक में अर्धचन्द्रकी ज्वाला झलक रही है, उनके हाथमें श्रेष्ठ त्रिशूल शोभा को प्राप्त होरहा है। उस समय जीवोंके मुक्तिदाता, निर्विकल्प, भयहारी, निरञ्जन, सबके हित करनेवाले, देवादिदेव, पञ्चानन कैलास पर्वत को शोभित करते हुए महामाया गिरजाके मुखकमलकी ओर प्रेम-वशीभूत और अनन्यचित्त होकर देखने लगे। तब विद्यारूपिणी उमादेवी परम भक्तियुक्त होकर जीवों के मङ्गलार्थ हाथ जोड़कर विनयके साथ हास्यवदन हो बोलीं॥ ४–१३॥

श्रीमहादेवी बोली।

हे देवदेवेश ! हे सदाशिव ! हे जगद्गुरो ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ, हे प्राणेश्वर ! हे महादेव ! मुझको गुरुगीता सुनाइये। हे

केन मार्गेण भोः स्वामिन् ! देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
त्वं कृपां कुरु मे देव ! नमामि चरणं तव ॥ १५ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥ १६ ॥
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः ।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्तिविमोचकः ॥ १७ ॥
गकारः सिद्धिदः प्रोक्तो रेफः पापस्य दाहकः ।
उकारः शम्भुरित्युक्तस्त्रितयाऽऽत्मा गुरुः स्मृतः ॥ १८ ॥*

स्वामिन् ! जीव कौन उपाय अवलम्बन करने से ब्रह्मपदको प्राप्त कर सक्ता है ? सो कृपा करके मुझसे कहिये । हे देव ! मैं तुम्हारे चरणों को वारम्वार नमस्कार करती हूँ ॥ १४-१५ ॥

श्रीमहादेव बोले ।

गु शब्दका अर्थ अन्धकार और रु शब्दका अर्थ तमका नाश करना है । इस कारण जो अज्ञानरूप अन्धकारको नाश करते हैं वेही गुरु शब्दवाच्य हैं ॥ १६ ॥ गुरु इस शब्दके प्रथम वर्ण गुसे माया आदि गुण प्रकाशित होता है और द्वितीय वर्ण रुसे ब्रह्ममें जो मायाका भ्रम है उसका नाश होता है; इस कारण गु शब्द सगुणको और रु शब्द निर्गुण अवस्थाको प्रतिपन्न करके गुरु शब्द बना है ॥ १७ ॥ गकारका अर्थ सिद्धिदाता, रकारका अर्थ पाप-हर्त्ता और उकारका अर्थ शिव है अर्थात् सिद्धिदाता शिव और पापहर्त्ता शिव ऐसा अर्थ ग-उ और र-उ बोधक गुरुशब्दसे समझना उचित है ॥ १८ ॥

* गुरु शब्दसे जगद्गुरु परमात्मा ईश्वरका ही बोध होता है; गुरु साक्षात् पर ब्रह्म हैं इसमें कोई सन्देह नहीं । सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ही इस संसारके सृष्टि स्थिति और लयकर्त्ता हैं; वे ही जीव पर कृपालु होकर जीवकी बुद्धिमें अपनी शक्ति विस्तारित कर जीवको निम्न ज्ञान-भूमिसे उन्नत ज्ञान-भूमिमें पहुंचा दिया

श्रीमहादेव्युवाच ।

मायामोहितजीवानां जन्ममृत्युजरादितः ।
रक्षायै कः प्रभवति स्वामिन् ! संसारसागरे ॥ १९ ॥
त्वत्तो नाऽन्यो दयासिन्धो ! कश्चिच्छक्नोति वै प्रभो ! ।
दातुं प्रतिवचश्चाऽस्य लोकशोकविमोचनम् ॥ २० ॥
त्रितापतप्तजीवानां कल्याणार्थं मया प्रभो ! ।
विज्ञप्तिः सादरं प्रश्न उत्तरेणाऽनुगृह्यताम् ॥ २१ ॥

श्रीमहादेवी बोली ।

हे नाथ ! मायामोहित जीवको जन्म मृत्यु आदिसे बचानेके लिये इस संसारमें कौन समर्थ है ॥ १९ ॥ हे कृपामय ! आपके विना और कोई भी इस लोकशोकविमोचन प्रश्नका उत्तर देनेवाला नहीं है ॥ २० ॥ त्रितापतापित जीवोंके कल्याणार्थ मेरे इस सविनय प्रश्नका उत्तर देकर मुझे आनन्दित करें ॥ २१ ॥

करते हैं, वे दयामय ही गुरु-मूर्ति धारण कर शिष्यको निम्न भूमिसे उन्नत भूमिमें खेंचकर चढ़ा लेते हैं, तब ही लघुशक्ति जीव गुरुशक्ति द्वारा आकृष्ट होकर ज्ञानभूमिमें उन्नतपदको प्राप्त होजाता है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा ही जीवको उसके किये हुए सत् असत् कर्म्मोंका फल दिया करते हैं; मायालिप्त जीव जो कुछ फल भोगता है वह मायाअतीत परमेश्वर का विधान किया हुआ ही भोगता है; परन्तु मायालिप्त होनेके कारण जीव ईश्वरके ऐसे कार्यको प्रत्यक्ष नहीं करसक्ता;वे भी जो कुछ करते हैं यथाव-वही करते हैं किन्तु परोक्ष करते हैं; उसी रीति के अनुसार जीव को सद्गति दान करते समय आपही अपने और किसी जीवरूप केन्द्रमें आविर्भूत होकर श्रीगुरुरूपसे जीव-का कल्याण किया करते हैं इस कारण श्रीगुरु ही मूर्त्तिमान् परब्रह्म है इस में सन्देह मात्र नहीं। वे पापहर्ता, सिद्धिदाता, मुक्तिकर्त्ता, दयामय, शिवरूप ईश्वर ही शरीरमें आविर्भूत होकर श्रीगुरुदेव रूपसे जीवके पापों का नाश करके दीक्षादान द्वारा उसको उन्नत ज्ञानभूमिमें पहुंचाकर उस बन्धनप्राप्त जीवको मुक्तिपदप्राप्तिका उपाय विधान करदेते हैं। श्रीगुरु देव ही साक्षात् ईश्वर और गुरुदीक्षा ही उनकी महाशक्ति है।

श्रीमहादेव उवाच।

संसाराऽपारपाथोधेः पारं गन्तुं महेश्वरि ! ।
श्रीगुरोश्चरणाऽम्भोजनौकैवैकाऽवलम्बनम् ॥ २२ ॥
सद्गुरो रूपमादाय जगत्यामहमेव हि ।
उद्धराम्यखिलाञ्जीवान्मृत्युसंसारसागरात् ॥ २३ ॥
यो गुरुः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स गुरुर्मतः ।
गुरौ मयि न भेदोऽस्ति भेदस्तत्र निरर्थकः ॥ २४ ॥
गुरुर्ज्ञानप्रदो नित्यं परमाऽऽनन्दसागरे ।
उन्मज्जयति जीवान्स तांस्तथैव निमज्जयन् ॥ २५ ॥
गुरुस्त्रितापतप्तानां जीवानां रक्षिता क्षितौ ।
सच्चिदानन्दरूपं हि गुरुर्ब्रह्म न संशयः ॥ २६ ॥
यादृगस्तीह सम्बन्धो ब्रह्माण्डस्येश्वरेण वै ।
तथा क्रियाऽऽख्ययोगस्य सम्बन्धो गुरुणा सह ॥ २७ ॥
दीक्षाविधावीश्वरो वै कारणस्थलमुच्यते ।
गुरुः कार्य्यस्थलञ्चाऽतो गुरुर्ब्रह्म भणीयते ॥ २८ ॥

श्रीमहादेव बोले।

संसाररूप अपार पारावारसे पार करनेके लिये श्रीगुरुदेवके चरणकमलरूप नौकाही एकमात्र उपाय है॥२२॥मैं ही गुरुरूपसे दृश्यरूपमें प्रकट होकर जीवोंका उद्धार संसारपारावार से किया करता हूँ॥२३॥जो गुरु हैं वे साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं वे साक्षात् गुरु हैं, गुरुमें और मुझमें भेद नहीं है, इनमें भेद मानना अनुचित है॥२४॥ गुरु ज्ञानदाता हैं, गुरु परमानन्दपारावार में उन्मज्जन निमज्जन करानेवाले और गुरु त्रितापसे जीवको बचानेवाले हैं इसी कारण गुरु सच्चिदानन्दमय ब्रह्म हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ २५–२६ ॥ ईश्वरके साथ जैसा ब्रह्माण्डका सम्बन्ध है, उसी प्रकार गुरुके साथ क्रियायोगका सम्बन्ध है ॥ २७ ॥ दीक्षाविधिमें ईश्वर कारणस्थल और गुरु कार्यस्थल कहे गये हैं, इस कारण गुरु ब्रह्मरूप हैं ॥ २८ ॥

गुरौ मानुषबुद्धिन्तु मन्त्रे चाऽक्षरभावनाम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्व्वाणो नरकं व्रजेत्॥ २९॥
जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्म्माऽधर्म्मप्रदर्शकः॥ ३०॥
गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥ ३१॥

श्रीमहादेव्युवाच।

जगन्मङ्गलकृन्नाथ! विशेषेणोपदिश्यताम्।
लक्षणं सद्गुरोर्येन सम्यग्ज्ञातं भवेद्ध्रुवम्॥ ३२॥
आचार्य्यगुरुभेदोऽपि येन स्याद्विदितो मम।
श्रेष्ठत्वं वा तयोः केन लक्षणेनाऽनुमीयते॥ ३३॥

जो लोग गुरुके विषयमें मनुष्यबुद्धि और मन्त्रके विषयमें अक्षरबुद्धि और देवप्रतिमामें पाषाणबुद्धि रखते हैं वे नरकगामी होते हैं॥२९॥ माता और पिता जन्म देनेके कारण पूजनीय हैं किन्तु गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान करानेवाले हैं इस कारण उनका पूजन पितृगणसे भी अधिक यत्न करके करना उचित है॥ ३०॥ गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही सद्गतिरूप हैं। परमेश्वरके रुष्ट होने पर तो गुरु बचानेवाले हैं परन्तु गुरुके अप्रसन्न होनेपर कोई भी त्राणदाता नहीं है॥ ३१॥

श्रीमहादेवी बोलीं।

हे नाथ! हे सर्व्वशक्तिमन्! हे सर्व्वज्ञ! आप जगत्के कल्याणार्थ मुझे ऐसे उपदेश दीजिये जिससे मैं श्रेष्ठ गुरुके लक्षण समझ सकूँ॥३२॥ और जिससे मैं यह भी समझ सकूँ कि गुरु और आचार्य्यमें भेद क्या है और श्रेष्ठ गुरु तथा श्रेष्ठ आचार्य्य किन लक्षणोंसे पहचाने जासकते हैं॥ ३३॥

श्रीमहादेव उवाच ।

सर्व्वशास्त्रपरो दक्षः सर्व्वशास्त्रार्थवित्सदा ।
सुवचाः सुन्दरः स्वंगः कुलीनः शुभदर्शनः ॥ ३४ ॥
जितेन्द्रियस्सत्यवादी ब्राह्मणश्शान्तमानसः ।
मातृपितृहिते युक्तः सर्व्वकर्म्मपरायणः ॥ ३५ ॥
आश्रमी देशवासी च गुरुरेवं विधीयते ।
आचार्य्यगुरुशब्दौ द्वौ क्वचित्पर्य्यायवाचकौ ॥ ३६ ॥
एवमर्थगतो भेदो भवत्यपि तयोः क्वचित् ।
उपनीय ददद्वेदमाचार्य्यः स उदाहृतः ॥ ३७ ॥
यः साधनप्रकर्षार्थं दीक्षयेत्स गुरुः स्मृतः ।
औपपत्तिकमंशन्तु धर्म्मशास्त्रस्य पण्डितः ॥ ३८ ॥

श्रीमहादेव बोले ।

सर्व्वशास्त्रोंमें पारङ्गत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्ववेत्ता और मधुर वाक्य भाषण करनेवाले, सब अङ्गोंसे पूर्ण और सुन्दर, कुलीन अर्थात् सत्कुलोद्भव और दर्शन करनेमें मङ्गलमूर्त्ति हों ॥ ३४ ॥ इन्द्रियाँ जिनकी सब अपने वशीभूत हों, सर्व्वदा सत्यभाषण करनेवाले हों, ब्राह्मणवर्ण हों, शान्तमानस अर्थात् जिनका मन कभी चञ्चल नहीं होता हो, माता पिताको समान हित करनेवाले हों, सम्पूर्ण कर्म्मोंके अनुष्ठानशील हों ॥३५॥ गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचर्य्य और संन्यास, इन आश्रमोंमें से किसी आश्रमके हों एवं भारतवर्ष-निवासी हों, इस प्रकारके सर्वगुणसम्पन्न महात्मा गुरु करने योग्य कहे गये हैं। आचार्य्य और गुरु ये दोनों कहीं कहीं पर्य्यायवाचक शब्द हैं ॥३६॥ तथा कार्य्य के वैलक्षण्यसे कभी कभी आचार्य्य और गुरु इनमें भेद भी है । उपनयन कराकर जो शिष्यको वेदका उपदेश करते हैं वे आचार्य्य हैं ॥३७॥ और आध्यात्मिक उन्नति के लिये जो शिष्य को दीक्षा देते हैं वे गुरु हैं । सम्पूर्ण

व्याचष्टे धर्म्ममिच्छूनां स आचार्य्यः प्रकीर्त्तितः ।
सर्व्वदर्शी तु यः साधुर्मुमुक्षूणां हिताय वै ॥ ३९ ॥
व्याख्याय धर्मशास्त्राणां क्रियासिद्धिप्रबोधकम् ।
उपासनाविधेः सम्यगीश्वरस्य परात्मनः ॥ ४० ॥
भेदान्प्रशास्ति धर्म्मज्ञः स गुरुः समुदाहृतः ।
सप्तानां ज्ञानभूमीनां शास्त्रोक्तानां विशेषतः ॥ ४१ ॥
प्रभेदान् यो विजानाति निगमस्याऽऽगमस्य च ।
ज्ञानस्य चाऽधिकारांस्त्रीन्भावत्रतात्पर्य्यलक्ष्यतः ॥ ४२ ॥
तन्त्रेषु च पुराणेषु भाषायास्त्रिविधां सृतिम् ।
सम्यग्भेदैर्विजानाति भाषातत्त्वविशारदः ॥ ४३ ॥
निपुणो लोकशिक्षायां श्रेष्ठाऽऽचार्य्यः स उच्यते ।
पञ्चतत्त्वविभेदज्ञः पञ्चभेदां विशेषतः ॥ ४४ ॥
सगुणोपासनां यस्तु सम्यग्जानाति कोविदः ।
चातुर्विध्येन विततां ब्रह्मणः समुपासनाम् ॥ ४५ ॥

वेद और शास्त्र आदि में सुपण्डित हों और उनका औपपत्तिक ज्ञान शिष्यको करावें वे आचार्य्य कहाते हैं । जो सर्व्वदर्शी साधु मुमुक्षुओंके हितार्थ वेदशास्त्रोक्त क्रियासिद्धांश और परमेश्वरकी उपासनाके भेदोंको यथाधिकार शिष्योंको बतलावें उनको गुरु कहते हैं । दर्शनशास्त्रोंकी सात भूमिके अनुसार जो वेद और शास्त्रके सकल भेदोंको जानते हों । अध्यात्म अधिदैव एवं अधिभूत नामक भावत्रयको भलीभांति समझते हों और तन्त्र एवं पुराणोंकी समाधिभाषा, लौकिकभाषा और परकीयभाषा, इनसे भलीभांति परिचित रहकर लोकशिक्षामें निपुण हों, वे ही श्रेष्ठ आचार्य्य कहे जाते हैं । पञ्चतत्त्वके अनुसार जो महापुरुष विष्णूपासना, सूर्य्योपासना, शक्त्युपासना, गणेशोपासना और शिवोपासनारूप पञ्च सगुण उपासनाके रहस्योंको पूर्ण समझते हों । और जो योगिराज मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग,

गम्भीरार्थां विजानीते बुधो निर्म्मलमानसः ।
सर्वकार्येषु निपुणो जीवन्मुक्तास्त्रितापहृत् ॥ ४६ ॥
करोति जीवकल्याणं गुरुः श्रेष्ठः स कथ्यते ॥ ४७ ॥

श्रीमहादेव्युवाच ।

सच्छिष्यलक्षणं नाथ ! मुमुक्षूणां त्रितापहृत् ! ।
गुरुभक्तस्य शिष्यस्य कर्त्तव्यञ्चाऽपि मे वद ॥४८॥
मुमुक्षुभिश्च शिष्यैः कैः शुभाऽऽचारैरवाप्यते ।
आत्मज्ञानं दयासिन्धो ! कृपया ब्रूहि तानपि ॥ ४९ ॥
येन ज्ञानेन लब्धेन शुभाऽऽचारान्वितैर्द्रुतम् ।
मुच्यते बन्धनान्नाथ ! शिष्यैः सद्गुरुसेवकैः ॥ ५० ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

शिष्यः कुलीनः शुद्धाऽऽत्मा पुरुषार्थपरायणः ।
अधीतवेदः कुशलो दूरमुक्तमनोभवः ॥ ५१ ॥
हितैषी प्राणिनां नित्यमास्तिकस्त्यक्तवञ्चनः ।

राजयोग, इन चारोंके अनुसार चतुर्विध उपासनाको जानते हों ऐसे ज्ञानी, निर्म्मलमानस, सर्व्व-कार्य्यमें निपुण, त्रितापरहित, जीवोंका कल्याण करनेवाले जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ गुरु कहलाते हैं ॥३८–४७॥

श्रीमहादेवी बोलीं ।

हे नाथ ! हे मुमुक्षुओंके त्रिताप दूर करनेवाले ! मुझे आप कृपा करके कहें कि श्रेष्ठ शिष्यका लक्षण क्या है और गुरुभक्त शिष्यका कर्त्तव्य क्या है और किन किन आचारोंके पालन करनेसे मुमुक्षु शिष्य आत्मज्ञान लाभ करके मुक्त हो सका है ॥४८—५०॥

श्रीमहादेव बोले ।

शिष्य कुलीन शुद्धात्मा और पुरुषार्थ परायण होना चाहिये। वह अधीतवेद हो, कुशल (चतुर) हो, कामी न हो, प्राणियों का

स्वधर्म्मनिरतो भक्त्या पितृमातृहिते स्थितः ॥ ५२ ॥
गुरुशुश्रूषणरतो वाङ्मनःकायकर्म्मभिः ।
शिष्यस्तु स गुणैर्युक्तो गुरुभक्तिरतः सदा ॥ ५३ ॥
धर्म्मकामादिसंयुक्तो गुरुमन्त्रपरायणः ।
सत्यबुद्धिर्गुरोर्मन्त्रे देवपूजनतत्परः ॥ ५४ ॥
गुरूपदिष्टमार्गे च सत्यबुद्धिरुदारधीः ।
अलुब्धः स्थिरगात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः ॥ ५५ ॥
एवंविधो भवेच्छिष्य इतरो दुःखकृद्गुरोः ।
शरीरमर्थं प्राणाँश्च गुरुभ्यो यः समर्पयन् ॥ ५६ ॥
गुरुभिः शिष्यते योगं स शिष्य इति कथ्यते ।
दीर्घदण्डवदानम्य सुमना गुरुसान्निधौ ॥ ५७ ॥
आत्मदाराऽऽदिकं सर्वं गुरवे च निवेदयेत् ।
आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणाऽऽदिकम् ॥ ५८ ॥

हितेच्छु हो, आस्तिक हो, प्रवञ्चक न हो, स्वधर्म्मनिरत हो, भक्तिपूर्व्वक माता पिता के हित में स्थित हो, मन वचन और शरीर तथा कर्म्मों से गुरुसेवापरायण हो, गुणसम्पन्न हो, गुरुभक्त हो, धर्म्मादिसम्पन्न हो, गुरुदत्त मन्त्र के जपादि में प्रवृत्त हो, गुरुदत्त मन्त्र में श्रद्धालु हो, देवपूजापरायण हो, गुरूपदिष्टमार्ग में सत्यबुद्धि हो, उदार हो, लोभी न हो, शरीर जिसका चञ्चल न हो, गुरुका आज्ञाकारी हो, जितेन्द्रिय हो, इस प्रकार का शिष्य होना चाहिये। इससे विपरीत गुण का होने पर गुरुको दुःख देनेवाला वह होगा। शरीर अर्थ और प्राणों को गुरुके अर्पण करके गुरु से शिक्षा प्राप्त करता है इसी कारण शिष्य कहा जाता है। शिष्य को गुरु के सन्मुख दीर्घ दण्डाकार होकर प्रणाम करना उचित है और असंकुचित चित्त से अपनी आत्मा, स्त्री, पुत्र, कन्या आदि को गुरु के अर्पण करना उचित है। शिष्यसाधक होकर अर्थात् गुरुदीक्षा ग्रहण करके गुरु के प्रीत्यर्थ आसन, शय्या, वस्त्र, वाहन और भूषण आदि उनको अर्पण करे। गुरु का

साधकेन प्रदातव्यं गुरोः सन्तोषकारणात् ।
गुरुपादोदकं पेयं गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ॥ ५९ ॥
गुरुमूर्त्तेः सदा ध्यानं गुरुस्तोत्रं सदा जपेत् ।
ऊर्द्ध्वं तिष्ठेद्गुरोरग्रे लब्धाऽनुज्ञो वसेत् पृथक् ॥ ६० ॥
निवीतवासा विनयी प्रह्वस्तिष्ठेद्गुरौ परम् ।
गुरौ तिष्ठति तिष्ठेच्चोपविष्टेऽनुज्ञया वसेत् ॥ ६१ ॥
सेवताऽङ्घ्री शयानस्य गच्छन्तश्चाऽप्यनुव्रजेत् ।
शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ॥ ६२ ॥
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ।
नित्यमुद्रितपाणिः स्यात् साध्वाचारः सुसंयतः ॥ ६३ ॥
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताऽभिमुखं गुरोः ।
हीनान्नवस्त्रवेशः स्यात् सर्वदा गुरुसन्निधौ ॥ ६४ ॥

चरणामृत पान, गुरु-उच्छिष्ट भोजन, सर्वदा गुरु-मूर्ति ध्यान और सदा गुरुस्तव पाठ करना शिष्य को उचित है गुरु के सन्मुख शिष्य-को खड़ा रहना उचित है; पश्चात् गुरु-आज्ञा ग्रहण करके पृथक् आसन पर बैठना युक्तियुक्त है; गुरु के सम्मुख शिष्य को अपना शरीर वस्त्र से आच्छादित कर विनयी और भययुक्त हो अवस्थान करना उचित है । गुरु के खड़े होने पर शिष्यको उसी क्षणमें खड़ा होना उचित है, पुनः गुरु के उपवेशन करने पर उनकी आज्ञा लेकर बैठना उचित है, गुरुके शयन करने पर शिष्य उनकी चरणसेवा करे और गुरुके गमन करने पर उनके पश्चात् गमन करना उचित है । शिष्य को उचित है कि वह अपने शरीर, वचन, बुद्धि, चक्षु आदि इन्द्रियगण और मनको संयम कर श्रीगुरुदेवके मुखारविन्दकी ओर देखता हुआ हाथ जोड़कर खड़ा रहे । शिष्यको उचित है कि वह सदाचारसम्पन्न होकर शरीर इन्द्रियादिको संयम करता हुआ हाथ जोड़कर सदा गुरुके सम्मुख खड़ा रहे और जब वे निज मुखसे कहें कि बैठो तब ही उपवेशन करे शिष्य जब गुरुके समीप जाय

उत्तिष्ठेत् प्रथमं चाऽस्य चरमं चैव संविशेत् ।
दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत ॥ ६५ ॥
परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् ।
नीचं शय्यासनं चाऽस्य सर्व्वदा गुरुसन्निधौ ॥ ६६ ॥
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टाऽऽसनो भवेत् ।
चापल्यं प्रमदागाथामहंकारं च वर्ज्जयेत् ॥ ६७ ॥
नाऽपृष्टो वचनं किंचिद्ब्रूयान्नाऽपि निषेधयेत् ।
गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत् ॥ ६८ ॥
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत् ।
गुरुरूपे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः ॥ ६९ ॥

तो गुरुसे हीन अन्न उसको भोजन करना उचित है और उनके पह-ननेके अपकृष्ट वस्त्र अलंकार आदि उसको धारण करना उचित है। शिष्यको गुरुसे पहले शय्या त्याग करना और गुरुसे पीछे शय्या पर शयनार्थ जाना उचित है। शिष्यको उचित है कि गुरुका कोई दुष्कार्य्य प्रकाश न करे, गुरुके कुपित होने पर उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करे और अन्य पुरुष यदि गुरु-निन्दा करता हो तो उसको श्रवण न करे। शिष्य को उचित है कि गुरु के समीप में नीची शय्या पर शयन करे, नीचे आसन पर उपवेशन करे और उनके सम्मुख यथेष्टासन न हो; अर्थात् गुरुके सन्मुख हाथ पैर आदि फैलाय कर यथेच्छा से न बैठे शिष्य को गुरु के सन्मुख चपलता, नारी-सम्बन्धिकथन और अहंकार त्याग करना उचित है, गुरुको विना पूछे कोई बात करनी उचित नहीं है और गुरुके किसी कार्य्य को निषेध करना भी उचित नहीं है। सर्वदा गुरुमूर्त्तिध्यान, सर्वदा गुरु-नामजप और गुरु-आज्ञा पालन शिष्य को करना उचित है; और गुरुके सिवाय और किसी की चिन्ता करना अनुचित है। गुरु-मुखस्थित परब्रह्मतत्त्व गुरुप्रसाद से ही लाभ हुआ करता है, इसकारण अपने आश्रम विद्या और जातित्व-अभिमान और कीर्तिअभिमान आदि को त्याग करके गुरु-शरणागत होना ही उचित है; अर्थात् "मैं उच्च वंश का हूं, संसारमें

जात्याश्रमयशोविद्यावित्तगर्व्वं परित्यजेन् ।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यं न भावयेत् ॥ ७० ॥
गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्याऽनुलभ्यते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोराराधनं कुरु ॥ ७१ ॥
नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम् ।
न च वाऽस्याऽनुकुर्व्वीत गतिभाषितचेष्टितम् ॥ ७२ ॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वाऽपि प्रवर्त्तते ।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः ॥ ७३ ॥
परीवादाद् खरो भवेत् श्वा वै भवति निन्दकः ।
परिभोक्ता भवेत्क्रामिः कीटो भवति मत्सरी ॥ ७४ ॥
गुरोः शय्याऽसनं यानं पादुकोपानत्पीठकम् ।
स्नानोदकं तथा छायां कदापि न विलङ्घयेत् ॥ ७५ ॥

मेरी ऐसी कीर्ति है" इत्यादि अहंकारभावोंको त्याग करके सदा गुरुको ही आश्रय समझता रहे ॥ ५१-७० ॥ केवल गुरु-भक्ति द्वारा ही गुरुमुखस्थिता परमा विद्या; अर्थात् जिस विद्या द्वारा ब्रह्मपद लाभ होता है वह विद्या लाभ होसक्ती है, इस कारण पूर्ण यत्नके साथ गुरुदेव की आराधना करना उचित है ॥ ७१ ॥ गुरुके पीछे भी गुरुका अधूरा नाम अर्थात् उपाधिसे वर्जित नाम उच्चारण करना उत्तम शिष्यको कभी उचित नहीं है । गुरुदेवके चलने कहने और कार्य करने आदिका अनुकरण दिखाना उचित नहीं है ॥ ७२ ॥ जहाँ गुरुका प्रतिवाद अर्थात् साक्षात्में दोषवर्णन, निन्दा अर्थात् असाक्षात्में दोष वर्णन आदि अकीर्त्ति कथन हो वहां शिष्यको उचित है कि अपने हाथ द्वारा कानोंको बन्द करले अथवा वहांसे उठकर स्थानान्तरमें चलाजाय ॥ ७३ ॥ शिष्य यदि गुरु-वाक्य का प्रतिवाद करे तो वह परजन्ममें गर्दभ, यदि निन्दा करे तो कुक्कुर, यदि अन्यायरूपसे गुरु का धन भोग करे तो कृमि और यदि गुरुका स्वयं द्वेषी हो तो कीट होता है ॥ ७४ ॥ शिष्यको उचित है कि गुरु-शय्या, आसन, यान, काष्ठ-पादुका, पीढी, स्नानीयजल और छाया उलङ्घन

गुरोरग्रे पृथक् पूजामौद्धत्यं च विवर्जयेत् ।
दीक्षां व्याख्यां प्रभुत्वं च गुरोरग्रे परित्यजेत् ॥ ७६ ॥
ऋणदानं तथाऽऽदानं वस्तूनां क्रयविक्रयम् ।
न कुर्य्याद्गुरुणा सार्द्धं शिष्यो भूत्वा कदाचन ॥ ७७ ॥
पुत्रैश्च पूजितस्तातः शिष्यैश्च पूजितो गुरुः ।
आज्ञया कुरुते कर्म्म पुत्रः शिष्यश्च भृत्यवत् ॥ ७८ ॥
न प्रेरयेद्गुरुं तातं शिष्यः पुत्रश्च कर्म्मसु ।
गुरवे देवि ! पित्रे च नित्यं सर्वस्वमर्पयेत् ॥ ७९ ॥
स च शिष्यः स च ज्ञानी य आज्ञां पालयेद्गुरोः ।
न क्षेमं तस्य मूढस्य यो गुरोरवचस्करः ॥ ८० ॥
गुरोर्हितं प्रकर्त्तव्यं वाङ्मनःकायकर्म्मभिः ।
अहिताऽऽचरणाद्देवि ! विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ८१ ॥
यथा खनन् खनित्रेण नरो वार्य्यधिगच्छति ।

न करे ॥ ७५ ॥ गुरुके सन्मुख गुरुके सिवाय और किसीकी पूजा, गुरुके सन्मुख धृष्टता प्रकाश, उपदेश देना, शास्त्र-व्याख्या करना और प्रभुत्व प्रकाश करना शिष्यको उचित नहीं है ॥ ७६ ॥ शिष्य होकर गुरुके साथ ऋणदान, ऋणग्रहण और द्रव्य-सम्बन्धीय क्रयविक्रय आदि कार्य्य करना उचित नहीं है ॥७७॥ पुत्रको पिताकी पूजा और शिष्यको गुरुकी पूजा करना उचित है। पुत्रको और शिष्यको उचित है कि वे भृत्य की नाईं उनकी आज्ञा पालन करें ॥७८॥ पुत्र पिताको और शिष्य गुरुको कभी किसी कार्य्यमें न नियुक्त करे। उचित है कि पुत्र पिताको और शिष्य गुरुको सर्वस्व समर्पण करदेवे ॥७९॥ जो मनुष्य विना विचार करते हुए गुरुकी आज्ञा पालन किया करता है वही यथार्थ में शिष्य है और वही यथार्थमें ज्ञानी है और जो गुरुवाक्यमें अश्रद्धा करता है उस मूढ़का कभी मङ्गल नहीं होता ॥ ८० ॥ हे देवी ! शिष्यको उचित है कि वाक्य, मन, शरीर और कर्म्म-द्वारा गुरुका हित अनुष्ठान करे, जो शिष्य गुरु-अहिताचारी होता है वह दूसरे जन्ममें विष्ठा-कीट होकर जन्म ग्रहण करता है ॥ ८१ ॥ जैसे कोई मनुष्य

तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ॥ ८२ ॥
आसमाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम्।
स गच्छत्यञ्जसा विप्रो ब्रह्मणः सद्म शाश्वतम् ॥ ८३ ॥

श्रीमहादेव्युवाच।

हे विश्वात्मन्! महायोगिन्! दीनबन्धो! जगद्गुरो!।
त्रितापाद्रक्षितुं जीवान्नेतुं मुक्तेः पदं तथा ॥ ८४ ॥
योगमार्गप्रचारोऽत्र गुरुभिर्यः प्रकाशितः।
तल्लक्षणानि भेदांश्च कृपया वद मे प्रभो! ॥ ८५ ॥

श्रीमहादेव उवाच।

मन्त्रयोगो लयश्चैव राजयोगो हठस्तथा।
योगश्चतुर्विधः प्रोक्तो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ८६ ॥ *

खनित्र यन्त्र द्वारा मृत्तिका खनन करते करते जल प्राप्त कर लेता है वैसेही जो शिष्य गुरु-सेवामें रत रहता है वह गुरुकी सारी विद्या लाभ करनेमें समर्थ होजाता है ॥ ८२ ॥ जो ब्राह्मण मृत्यु समय-पर्य्यन्त श्रीगुरु-सेवामें अनुरक्त रहता है वह देहान्तरके पश्चात् ब्रह्मलोकमें गमन करता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ ८३ ॥

श्रीमहादेवी बोली।

हे योगियोंके ईश्वर! हे विश्वके आत्मा! हे जगद्गुरो! जीव-को त्रितापसे बचाने और मुक्तिपदमें पहुँचानेके लिये आपने जो योगमार्गका प्रचार गुरुके द्वारा जगत्में प्रकाशित किया है उसके कितने भेद हैं और उनके लक्षण क्या हैं? सो वर्णन करके मुझे कृत-कृत्य कीजिये ॥ ८४-८५ ॥

श्रीमहादेव बोले।

तत्त्वदर्शी योगियों ने मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, इस

* मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग, ये चार प्रकारकी पृथक् पृथक् साधनप्रणाली हैं। सब सम्प्रदायके उपासकोंके लिये ही सब साधन उपकारी हैं। केवल पृथक् पृथक् प्रकारके अधिकारीके लिये ये पृथक् पृथक् योग-साधन-मार्ग बताये

नामरूपात्मिका सृष्टिर्यस्मात्तदवलम्बनात् ।
बन्धनान्मुच्यमानोऽयं मुक्तिमाप्नोति साधकः ॥ ८७ ॥
तामेव भूमिमालम्ब्य स्खलनं यत्र जायते ।
उत्तिष्ठति जनस्सर्वोऽध्यक्षेणैतत्समीक्ष्यते ॥ ८८ ॥
नामरूपात्मकैर्भावैर्बध्यन्ते निखिला जनाः ।
अविद्याकलिताश्चैव तादृक्प्रकृतिवैभवात् ॥ ८९ ॥
आत्मनस्सूक्ष्मप्रकृतिम्प्रवृत्तिञ्चाऽनुसृत्य वै ।
नामरूपात्मनोश्शब्दभावयोरवलम्बनात् ॥ ९० ॥
यो योगः साध्यते सोऽयं मन्त्रयोगः प्रकीर्त्तितः ।
प्राणाऽपाननादबिन्दुजीवात्मपरमात्मनाम् ॥ ९१ ॥
मेलनाद्घटते यस्मात्तस्माद्वै घट उच्यते ।
आमकुम्भमिवाऽम्भःस्थं जीर्य्यमाणं सदा घटम् ॥ ९२ ॥
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ।

प्रकारसे चार प्रकारका योग वर्णन किया है ॥ ८६ ॥ सृष्टि नाम-रूपात्मक होनेके कारण नाम रूपके अवलम्बनसेही साधक सृष्टिके बन्धनसे अतीत होकर मुक्तिपद प्राप्त कर सक्ता है ॥ ८७ ॥ जहां मनुष्य गिरता है उसी भूमिके अवलम्बन से पुनः उठ सक्ता है ॥८८॥ नाम-रूपात्मक विषय जीवको बन्धन-युक्त करते हैं, नाम-रूपात्मक प्रकृति-वैभव जीवको अविद्यासे ग्रास करे रहते हैं ॥ ८६ ॥ सुतरां अपनी अपनी सूक्ष्म प्रकृति और प्रवृत्ति की गतिके अनुसार नाममय शब्द और भावमय रूपके अवलम्बनसे जो योगसाधन किया जाय उसको मन्त्रयोग कहते हैं । प्राण अपान, नाद बिन्दु और जीवात्मा परमात्माके संयोगसे बनता है इस कारण उसे घट कहते हैं । जलमें स्थित कच्चे घड़ेके समान नाश होते हुए घटको सदा योगरूपी अग्निसे पकाकर घटशुद्धि करनी चाहिये । घटका योगके साथ

गये हैं । श्रेष्ठ गुरुगण इन चारों प्रकारके योगसाधनके रहस्यको जानते हैं और जैसा शिष्य अधिकारी होता है वैसा-ही उपदेश दिया करते हैं ।

घटयोगसमायोगाद्धठयोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ९३ ॥
मन्त्राद्धठेन सम्पाद्यो योगोऽयमिति वा प्रिये!।
हठयोग इति प्रोक्तो हठाज्जीवशुभप्रदः ॥ ९४ ॥
हठयोगेन प्रथमं जीर्य्यमाणामिमां तनुम्।
द्रढ़यन्सूक्ष्मदेहं वै कुर्य्याद्योगयुजं पुनः ॥ ९५ ॥
स्थूलः सूक्ष्मस्य देहो वै परिणामान्तरं यतः।
कादिवर्णान्समभ्यस्य शास्त्रज्ञानं यथाक्रमम् ॥ ९६ ॥
यथोपलभ्यते तद्वत्स्थूलदेहस्य साधनैः।
योगेन मनसो योगो हठयोगः प्रकीर्त्तितः ॥ ९७ ॥
ब्रह्माण्डपिण्डे सदृशे ब्रह्मप्रकृतिसम्भवात्।
समष्टिव्यष्टिसम्बन्धादेकसम्बन्धगुम्फिते ॥ ९८ ॥
ऋषिदेवाश्च पितरो नित्यं प्रकृतिपूरुषौ।
तिष्ठन्ति पिण्डे ब्रह्माण्डे ग्रहनक्षत्रराशयः ॥ ९९ ॥
पिण्डज्ञानेन ब्रह्माण्डज्ञानं भवति निश्चितम्।
गुरूपदेशतः पिण्डज्ञानमाप्त्वा यथायथम् ॥ १०० ॥

सम्बन्ध होनेसे हठयोग कहा जाता है अथवा मन्त्रयोगकी अपेक्षा यह योग हठसे सम्पादन किया जाता है इसी कारण हे प्रिये! इसको हठयोग कहते हैं। यह शीघ्र जीव-कल्याणकारी है ॥ ९०–९४ ॥ नाश होनेवाले इस शरीरको पहले हठयोगसे दृढ करके फिर सूक्ष्म शरीरको योगयुक्त करे ॥ ९५ ॥ स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीरका परिणाममात्र है। जैसे कादि वर्णोंका अभ्यास करके यथाक्रम शास्त्रज्ञान प्राप्त होता है उसी प्रकार स्थूलदेह के साधनोंसे सूक्ष्म शरीरका जो योगसाधन है वही हठयोग है ॥ ९६–९७ ॥ ब्रह्मशक्ति प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्माण्ड और पिण्ड समान हैं और समष्टि व्यष्टि सम्बन्धमें गुम्फित हैं ॥ ९८ ॥ ब्रह्माण्डकी तरह पिण्डमें भी ऋषि, देवता, पितर्, प्रकृति, पुरुष, ग्रह, नक्षत्रादि सब नित्य स्थित हैं ॥ ९९ ॥ पिण्डके ज्ञानसे ब्रह्माण्डका ज्ञान अवश्यही हो जाता है।

ततो निपुणया युक्त्या पुरुषे प्रकृतेर्लयः ।
लययोगाऽभिधेयः स्यात् कृतः शुद्धैर्महर्षिभिः ॥ १०१ ॥
भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोड़शाङ्गानि निश्चितम् ।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोड़श शोभनाः ॥ १०२ ॥
भक्तिः शुद्धिश्चाऽऽसनञ्च पञ्चाङ्गस्याऽपि सेवनम् ।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि ॥ १०३ ॥
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः ।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोड़श ॥ १०४ ॥
षट्कर्माऽऽसनमुद्राः प्रत्याहारः प्राणसंयमश्चैव ।
ध्यानसमाधी सप्तैवाङ्गानि स्युर्हठस्य योगस्य ॥ १०५ ॥
अङ्गानि लययोगस्य नवैवेति बुधा विदुः ।
यमश्च नियमश्चैव स्थूलसूक्ष्मक्रिये तथा ॥ १०६ ॥
प्रत्याहारो धारणा च ध्यानञ्चापि लयक्रिया ।
समाधिश्च नवाङ्गानि लययोगस्य निश्चितम् ॥ १०७ ॥
ध्यानं वै मन्त्रयोगस्याऽध्यात्मभावाद्विनिर्गतम् ।
परानन्दमये भावेऽतीन्द्रिये च विलक्षणे ॥ १०८ ॥

गुरूपदेशसे पिण्डज्ञानको यथावत् प्राप्त करके तब सुकौशल पूर्ण युक्तिसे पुरुषमें प्रकृतिका जो लय करता है उसको लययोग महर्षि लोग कहते हैं ॥ १००-१०१ ॥ मन्त्रयोग सोलह अङ्गोंसे सुशोभित है, जैसे चन्द्रमा सोलह कलाओंसे सुशोभित है ॥ १०२ ॥ भक्ति, शुद्धि, आसन, पञ्चाङ्गसेवन, आचार, धारणा, दिव्यदेशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, याग, जप, ध्यान और समाधि, मन्त्रयोगके ये षोडश अङ्ग हैं ॥ १०३-१०४ ॥ षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि, ये सात हठयोगके अङ्ग हैं ॥ १०५ ॥ यम, नियम, स्थूलक्रिया, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लयक्रिया और समाधि, ये नव लययोगके अङ्ग हैं ॥ १०६-१०७ ॥ अध्यात्मभावसे ही मन्त्रयोगके ध्यानोंका आविर्भाव हुआ है । गम्भीर,

भ्रमद्भिः साधकश्रेयोवाञ्छद्भिर्योगवित्तमैः।
उपासनां पञ्चविधां ज्ञात्वा साधकयोग्यताम् ॥ १०९ ॥
मन्त्रध्यानं हि कथितमध्यात्मस्याऽनुसारतः।
वेदतन्त्रपुराणेषु मन्त्रशास्त्रप्रवर्त्तकैः ॥ ११० ॥
वर्णितं श्रेयइच्छद्भिर्मन्त्रयोगपरस्य वै।
ध्यानानां वै बहुत्वेऽपि तत्प्रोक्तं पञ्चधैव हि ॥ १११ ॥
तेषां भावमयत्वेन समाधिरधिगम्यते।
मन्त्रयोगो हठश्चैव लययोगः पृथक् पृथक् ॥ ११२ ॥
स्थूलं ज्योतिस्तथा विन्दु ध्यानं तु त्रिविधं विदुः।
स्थूलं मूर्त्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं भवेत् ॥ ११३ ॥
विन्दुं विन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली परदेवता।
सृष्टिस्थितिविनाशानां हेतुता मनासि स्थिता ॥ ११४ ॥
तत्साहाय्यात्साध्यते यो राजयोग इति स्मृतः।
मन्त्रे हठे लये चैव सिद्धिमासाद्य यत्नतः ॥ ११५ ॥

अतीन्द्रिय, नाना वैचित्र्यपूर्ण और परमानन्दमय भावराज्यमें भ्रमण करते हुए पञ्चोपासना के अधिकारानुसार विभिन्न साधकोंके लिये विभिन्न प्रकार अध्यात्मभावपुञ्जके आदर्शपर मन्त्रयोग-ध्यान विधिबद्ध हुए हैं। आत्मतत्त्ववेत्ता महर्षियोंने मन्त्रयोगियोंके कल्याणार्थ वेद पुराण और तन्त्रोंमें अनेक रूपोंका वर्णन किया है। वे सब ध्यान बहु होने पर भी पञ्चोपासनाके अनुसार पञ्च श्रेणी में विभक्त हैं। सब ध्यान ही अभ्रान्त भावमय होने के कारण समाधि देनेवाले हैं। मन्त्रयोग, हठयोग और लययोग, इनका पृथक् पृथक् क्रमशः स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान और विन्दुध्यान है। स्थूलध्यान मूर्त्तिमय है, ज्योतिर्ध्यान तेजोमय है और विन्दुध्यान विन्दुमय ब्रह्म है। यहां कुलकुण्डलिनी परदेवता है। सृष्टि स्थिति और लयका कारण मनमें स्थित है उस मनकी सहायतासे जो योगसाधन किया जाय वह राजयोग कहाता है। मन्त्रयोग, हठयोग और लययोग इनमेंसे किसी

पूर्णोऽधिकारमाप्नोति राजयोगपरो नरः ।
समाधिर्मन्त्रयोगस्य महाभाव इतीरितः ॥ ११६ ॥
हठस्य च महाबोधः समाधिस्तेन सिध्यति ।
प्रशस्तो लययोगस्य समाधिर्हि महालयः ॥ ११७ ॥
विचारबुद्धेः प्रधान्यं राजयोगस्य साधने ।
ब्रह्मध्यानं हि तद्ध्यानं समाधिर्निर्विकल्पकः ॥ ११८ ॥
तेनोपलब्धसिद्धिर्हि जीवन्मुक्तः प्रकथ्यते ।
उपलब्धमहाभावा महाबोधाऽन्विताश्च वा ॥ ११९ ॥
महालयं प्रपन्नाश्च तत्त्वज्ञानाऽवलम्बतः ।
योगिनो राजयोगस्य भूमिमासादयन्ति ते ॥ १२० ॥
योगसाधनमूर्द्धन्यो राजयोगोऽभिधीयते ॥ १२१ ॥

श्रीमहादेव्युवाच ।

योगेश ! जगदाधार ! कतिधोपासना च के ।
तद्विधेर्भगवन् ! भेदा मुक्तिमार्गप्रदर्शिनः ॥ १२२ ॥

में भी यत्नपूर्वक सिद्धि (पूर्णता) प्राप्त करके राजयोग साधन करने वाला मनुष्य पूर्णाधिकारको प्राप्त होता है। मन्त्रयोग की समाधि महाभाव, हठयोगकी महाबोध और लययोगकी समाधि महालय नामसे अभिहित होती है ॥ १०८-११७ ॥ राजयोगके साधन में विचारबुद्धिकी प्रधानता है और उसका ध्यान ब्रह्मध्यान कहाता है और निर्विकल्प समाधि उसकी समाधि है। उस समाधिको प्राप्त होकर योगी जीवन्मुक्त कहाता है। महाभावको प्राप्त मन्त्रयोगी, महाबोधको प्राप्त हठयोगी, महालयको प्राप्त लययोगी, ये सब ही तत्त्वज्ञानके अवलम्बनसे राजयोगकी भूमिको प्राप्त होते हैं। योग-साधनोंमें जो परम प्रधान है वह राजयोग नामसे अभिहित होता है ॥ ११८-१२१ ॥

श्रीमहादेवी बोली ।

हे योगेश्वर ! जगदात्मन् ! उपासना कितने प्रकारकी होती है

तस्याः के दिव्यदेशाश्च दिव्यभावेन भास्वराः।
तत्सर्व्वं कृपया नाथ! वदस्व वदतां वर! ॥ १२३ ॥

श्रीमहादेव उवाच।

सगुणो निर्गुणश्चाऽपि द्विविधो भेद ईर्य्यते।
उपासनाविधेर्देवि! सगुणोऽपि द्विधा मतः ॥ १२४ ॥
सकामोपासनायाश्च भेदा यद्यपि नैकशः।
परन्त्वनन्यभक्तानां जनानां मुक्तिमिच्छताम् ॥ १२५ ॥
भेदत्रितयमेवैतद्रहस्यं देवि! गोपितम्।
वक्ष्ये गुप्तरहस्यं तद्भवतीं भाग्यशालिनीम् ॥ १२६ ॥
समाहितेन शान्तेन स्वान्तेनैवाऽवधार्य्यताम्।
पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मणो निर्गुणस्य च ॥ १२७ ॥
लीलाविग्रहरूपाणाञ्चेत्युपास्तिस्त्रिधा मता।
विष्णुः सूर्य्यश्चशक्तिश्च गणाधीशश्च शङ्करः ॥ १२८ ॥
पञ्चोपास्याः सदा देवि! सगुणोपासनाविधौ।
एते पञ्च महेशानि! सगुणो भेद ईरितः ॥ १२९ ॥

मुक्ति-पथ-प्रदर्शक उपासनाविधिके भेद क्या क्या हैं और उपासनाके दिव्यदेश क्या क्या हैं सो वर्णन करके मुझे सफल-मनोरथ कीजिये ॥ १२२-१२३ ॥

श्री महादेव बोले।

उपासनाके दो भेद हैं। यथा-निर्गुण उपासना और सगुण उपासना। सगुण उपासना दो प्रकारकी है ॥ १२४ ॥ यद्यपि सकाम उपासना के और भी अनेक भेद हैं परन्तु मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले अनन्य भक्तके लिये केवल ये तीन ही भेद हैं। यह तुमसे मैं गुप्त रहस्य कह रहा हूँ। सावधान होकर सुनो। निर्गुण उपासना, सगुण पञ्चोपासना और लीला-विग्रह-उपासना, इस प्रकारसे तीन भेद माने गये हैं। शिव, गणेश, शक्ति, सूर्य्य और विष्णु, ये पञ्च उपास्य सगुण रूप पञ्च सगुणोपासनाके माने गये हैं। ये पाँचों

सच्चिदानन्दरूपस्य ब्रह्मणो नाऽत्र संशयः।
निर्गुणोऽपि निराकारो व्यापकः स परात्परः॥ १३०॥
साधकानां हि कल्याणं विधातुं वसुधातले।
बिभर्त्ति सगुणं रूपं त्वत्साहाय्यात्पतिव्रते!॥ १३१॥
यथा गवां शरीरेषु व्याप्तं दुग्धं रसात्मकम्।
परं पयोधरादेव केवलं क्षरते ध्रुवम्॥ १३२॥
तथैव सर्व्वव्याप्तोऽपि देवो व्यापकभावतः।
दिव्यषोड़शदेशेषु पूज्यते परमेश्वरः॥ १३३॥
वह्न्यम्बुलिङ्गकुड्यानि स्थण्डिलं पटमण्डले।
विशिखं नित्ययन्त्रञ्च भावयन्त्रञ्च विग्रहः॥ १३४॥
पीठश्चाऽपि विभूतिश्च हृन्मूर्द्धाऽपि महेश्वरि!।
एते षोड़श दिव्याश्च देशाः प्रोक्ता मयाऽनघे!॥ १३५॥
यद्यच्छरीरमाश्रित्य भगवान्सर्वशक्तिमान्।

सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकेही सगुण भेद हैं यह निस्सन्देह है। परमात्मा निराकार निर्गुण और व्यापक होने पर भी साधकके कल्याणार्थ तुम्हारी सहायतासे सगुणरूप धारण किया करते हैं॥ १२५-१३१॥ जिस प्रकार गायके सब शरीरमें रसरूपसे दुग्ध व्याप्त है परन्तु केवल स्तनके द्वारा ही वह निःसरण होता है; उसी प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक होने परभी सोलह दिव्य देशोंमें पूजे जाते हैं॥१३२-१३३॥ वह्नि, अम्बु, लिङ्ग, स्थण्डिल, कुड्य, पट, मण्डल, विशिख, नित्ययन्त्र, भावयन्त्र, पीठ, विग्रह, विभूति, नाभि, हृदय और मूर्द्धा, ये सोलह दिव्य देश कहाते हैं। इन सोलह दिव्य देशोंमें जैसा गुरूपदेश हो साधक परमात्माकी पूजा करके मुक्तिपद लाभ करता है॥१३४-१३५॥ जिन अवतार शरीरोंको धारण करके सर्व्वशक्तिमान् भगवान् तुम्हारी

* सनातनधर्म्मावलम्बी मूर्त्तिकी पूजा नहीं करते हैं परन्तु इन सोलह दिव्यदेशों में सर्व्वव्यापक परमात्माकी पूजा करते हैं। इन सोलह दिव्यदेशोंमेंसे मूर्त्ति एक दिव्यदेश है।

वतीर्णो विविधा लीला विधाय वसुधातले ॥ १३६ ॥
जगत्पालयते देवि ! लीलाविग्रह एव सः ।
उपासनाऽनुसारेण वेदशास्त्रेषु भूरिशः ॥ १३७ ॥
लीलाविग्रहरूपाणामितिहासोऽपि लभ्यते ।
तदुपासनकक्षाऽपि सगुणं परिकीर्त्तितम् ॥ १३८ ॥
विष्णोः सूर्य्यस्य शक्तेश्च गणेशस्य शिवस्य च ।
गीतासु गीता ये शब्दा विष्णुसूर्य्यादयः प्रिये ! ॥ १३९ ॥
ब्रह्मणश्चाद्वितियस्य साक्षात्ते चापि वाचकाः ।
भक्तिस्तु त्रिविधा ज्ञेया वैधी रागात्मिका परा ॥ १४० ॥
देवे परोऽनुरागस्तु भक्तिः सम्प्रोच्यते बुधैः ।
विधिना या विनिर्णीता निषेधेन तथा पुनः । ॥ १४१ ॥
साध्यमाना च या धीरैः सा वैधी भक्तिरुच्यते ।
ययाऽऽस्वाद्य रसान्भक्तेर्भावे मज्जति साधकः ॥ १४२ ॥
रागात्मिका सा कथिता भक्तियोगविशारदैः ।
पराऽऽनन्दप्रदा भक्तिः पराभक्तिर्मता बुधैः ॥ १४३ ॥

सहायतासे नाना लीला करके संसारकी रक्षा करते हैं वे रूपही लीला-विग्रह कहाते हैं। पञ्चोपासनाके अनुसार वेद और शास्त्रोंमें अनेक लीला-विग्रह धारणके इतिहास पाये जाते हैं उनकी उपासना भी सगुण उपासना कही जाती है ॥ १३३-१३८ ॥ शिवगीता (शम्भुगीता) गणेशगीता (धीशगीता) देवीगीता (शक्तिगीता) सूर्य्यगीता और विष्णुगीताके प्रतिपाद्य शिव, गणेश, देवी, सूर्य्य और विष्णु, ये सब एक ही अद्वितीय परब्रह्मके ही वाचक हैं। भक्तिके तीन भेद हैं, यथा-वैधी भक्ति, रागात्मिका भक्ति और पराभक्ति। अपने इष्टदेवमें ऐकान्तिक अनुरागको धीर पुरुष भक्ति कहते हैं। विधिनिषेध द्वारा निर्णीत और साध्यमान भक्तिको वैधी कहते हैं। भक्तिरसका आस्वादन कराकर साधकको भावविशेषमें निमग्न करानेवाली भक्ति रागात्मिका कही जाती है। परमानन्दप्रदा भक्ति

या प्राप्यते समाधिस्थैर्योगिभिर्योगपारगैः ।
त्रैगुण्यभेदात्रिविधा भक्ता वै परिकीर्त्तिताः ॥ १४४ ॥
आर्त्तो जिज्ञासुरार्थार्थी तथा त्रिगुणतः परः ।
पराभक्त्यधिकारी यो ज्ञानिभक्तः स तुर्यकः ॥ १४५ ॥
उपासकाः स्युस्त्रिविधास्त्रिगुणस्याऽनुसारतः ।
ब्रह्मोपासक एवाऽत्र श्रेष्ठः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥ १४६ ॥
प्रथमा सगुणोपास्तिरवताराऽर्चनाश्च याः ।
विहिता ब्रह्मबुद्ध्या चेदत्रैवाऽन्तर्भवन्ति ताः ॥ १४७ ॥
सकामबुद्ध्या विहितं देवर्षिपितृपूजनम् ।
मध्यमं मध्यमा ज्ञेयास्तत्कर्त्तारस्तथा पुनः ॥ १४८ ॥
अधमा वै समाख्याताः क्षुद्रशक्तिसमर्च्चकाः ।
प्रेताद्युपासकाश्चैव विज्ञेया ह्यधमाऽधमाः ॥ १४९ ॥
सर्व्वोपासनहीनास्तु पशवः परिकीर्त्तिताः ।
ब्रह्मोपासनमेवाऽत्र मुख्यं परममङ्गलम् ॥ १५० ॥

पराभक्ति कहाती है जो योगमें कुशल योगिगणको समाधिदशामें प्राप्त होती है । भक्त त्रिगुणभेदसे त्रिविध होते हैं, यथा-आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और चतुर्थ ज्ञानी जो त्रिगुणातीत है । ज्ञानी भक्त ही पराभक्तिका अधिकारी हो सक्ता है ॥ १३६-१४५ ॥ त्रिगुणभेदसे उपासक तीन प्रकारके होते हैं । ब्रह्मोपासक सबमें श्रेष्ठ है ऐसा विद्वद्गणने कहा है ॥ १४६ ॥ ब्रह्मबुद्धिसे प्रथम सगुणोपासक अर्थात् पञ्चदेवोपासक और ब्रह्मबुद्धिसे द्वितीय सगुणोपासक अर्थात् अवतारोपासक इसी श्रेष्ठ श्रेणीमें हैं ॥१४७॥ सकाम बुद्धिसे ऋषि देवता और पितरोंकी उपासना करनेवाले द्वितीय श्रेणी (मध्यम श्रेणी) के हैं और क्षुद्र शक्तियोंकी उपासना करनेवाले तृतीय श्रेणी (अधम श्रेणी) के हैं । उपदेवता प्रेतादिककी उपासना इसी निम्न श्रेणी (अधमाधम श्रेणी) की समझी जाती है । जो किसी उपासनाको नहीं करते हैं वे पशु हैं । प्रथम श्रेणीकी उपासना अर्थात् ब्रह्मोपासना

निःश्रेयसकरं ज्ञेयं सर्व्वश्रेष्ठं शुभावहम् ॥ १५१ ॥

श्रीमहादेव्युवाच ।

यथा मे गुरुमाहात्म्यं सम्यग्ज्ञातं भवेत्प्रभो ! ।
तथा विस्तरतो नाथ ! तन्माहात्म्यमुदाहर ॥ १५२ ॥
सद्गुरोर्महिमा देव ! सम्यग्ज्ञातः श्रुतो भुवि ।
अज्ञानतमसाऽऽच्छन्नं मनोमलमपोहति ॥ १५३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १५४ ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १५५ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः १५६ ॥

ही परम कल्याणप्रद और निःश्रेयसकर होनेके कारण सर्व्वश्रेष्ठ जानने योग्य है ॥ १४८-१५१ ॥

श्रीमहादेवी बोली ।

हे नाथ ! गुरुदेवकी महिमा जिससे मैं भली प्रकारसे समझ सकूं, इस कारण गुरुदेवकी विस्तृत महिमा वर्णन करके मुझे कृतार्थ करें ॥ १५२-१५३ ॥

श्रीमहादेव बोले ।

गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही शिव और गुरु ही परब्रह्म हैं, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है। जो अखण्ड मण्डलरूप इस स्थावर जङ्गमात्मक संसारमें व्याप्त हो रहे हैं उन परमात्माके परम पदका दर्शन जो कराते हैं; ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है । जिन्होंने ज्ञानरूप अञ्जनकी शलाका द्वारा अज्ञानरूप अन्धकारसे अन्धे जीवके नेत्रोंको खोल दिया है ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १५४-१५६ ॥

स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत्किञ्चित्सचराऽचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १५७॥
चिन्मयं व्याप्नुवन्सर्व्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १५८॥
सर्व्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदाऽम्बुजः।
वेदान्ताऽम्बुजसूर्य्यो यस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १५९॥
चेतनः शाश्वतः शान्तो व्योमाऽतीतो निरञ्जनः।
बिन्दुनादकलातीतस्तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १६०॥
ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः।
भुक्तिमुक्तिप्रदाता च तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १६१॥
अनेकजन्मसंप्राप्तकर्म्मबन्धविदाहिने।
आत्मज्ञानप्रदानेन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ १६२॥
शोषणं भवसिन्धोश्च ज्ञापनं सारसम्पदः।

आकाशके सहित जड़ और चेतन जो कुछ पदार्थ हैं उनमें जो परमात्मा व्याप्त होरहे हैं उनके चरणकमलोंका दर्शन जिनके द्वारा मिला है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ १५७॥ जो स्थावर जङ्गमात्मक त्रिलोकमें व्याप्त होरहे हैं और जो शुद्धज्ञानमय हैं ऐसे परमात्माके चरणकमलोंका दर्शन जिनके द्वारा हुआ है उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ १५८॥ जिनके चरणकमल-युगल समस्त श्रुतियोंके शिरोमणिरूपसे विराजित हैं, जो वेदान्तरूप अमल कमलके विकसित करनेमें कमलपति सूर्य्य हैं ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥१५९॥ जो पुरुष चैतन्यरूप, नित्य, शान्त, आकाशसे भी परे और निरञ्जन हैं, जो प्रणव ज्योति और कलासे अतीत हैं ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥१६०॥ जो ज्ञान-शक्तिकी पूर्णताको पहुँचे हुए हैं और तत्त्वरूप माला से विभूषित हैं और भोग और मोक्ष प्रदान करनेमें समर्थ हैं, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ १६१॥ जो आत्मज्ञानदान द्वारा बहु जन्मजन्मान्तरके कर्म्मरूप बन्धनको दग्ध किया करते हैं ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है॥ १६२॥ जिनके पादोदक पान करनेसे पूर्ण-

गुरोः पादोदकं सम्यक् तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १६३ ॥ *
न गुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात्परं नाऽस्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १६४ ॥ ÷
मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः ।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १६५ ॥ ×
गुरुरादिरनादिश्च गुरुः परमदैवतम् ।
गुरोः परतरं नाऽस्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १६६ ॥
ध्यानमूलं गुरोर्मूर्त्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।

रूपेण भवसमुद्र सूख जाता है और तत्त्वज्ञानरूप सारवान् सम्पत्तिकी प्राप्ति हो जाती है ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥१६३॥ तत्त्व अर्थात् ब्रह्मज्ञान श्रीगुरुसे अधिक नहीं हैं, तपस्या भी श्रीगुरुसे अधिक नहीं है और जिस गुरुतत्त्वज्ञानसे अधिक और इस संसारमें कुछभी नहीं है ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥१६४॥ मेरे नाथ ही जगत्के श्रीनाथ ईश्वर हैं, मेरे श्रीगुरु ही जगद्गुरु हैं, मेरा आत्मा ही जगत्के सब प्राणियोंका आत्मा है, सो ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १६५ ॥ गुरु ही सबके आदि हैं, उनसे आदि कोई भी नहीं है, गुरुही देवताओंके देवता हैं, गुरुसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, ऐसे श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥ १६६ ॥ गुरु-मूर्ति ध्यान ही सब ध्यानोंका मूल है,

* विना गुरुके ज्ञानकी प्राप्ति होही नहीं सक्ती, विना तत्त्वज्ञानके भगवद्भक्ति, भगवद्दर्शन और मुक्ति प्राप्त होना दुर्लभ है; इस कारण श्रीगुरुदेव ही भगवद्दर्शन और भगवत्प्राप्तिरूप मुक्ति प्राप्त करानेके कारण हैं। जब देहधारी गुरु-मूर्त्तिमें लोकनाथ श्रीभगवान् आविर्भूत होकर शिष्यकी शक्तिके अनुसार उपदेश दान द्वारा उसका कल्याण किया करते हैं, तब गुरुकी और श्रीभगवान्की एकता स्थापन हुई, इसमें कोई भी सन्देह नहीं। श्रीगुरुदेव ही मुक्तिदाता हैं, श्रीगुरु महाराज ही मूर्तिमान् ब्रह्म हैं, यही वेदका सिद्धान्त है।

÷ जब श्रीगुरु द्वारा ही ब्रह्मज्ञान और साधन तप आदिकी प्राप्ति होती है तब गुरु ही सबसे अधिक हुए, श्रीगुरुदेवसे अधिक इस संसारमें कुछ भी नहीं हो सक्ता।

× जगद्गुरु ईश्वर ही गुरु हैं। गुरु एक अद्वितीय हैं; अर्थात् वह एकमात्र जगद्गुरु ही जगत्के समस्त जिज्ञासुगणके उपदेश दाता हैं। वह अद्वितीय परम ज्ञानमय परमात्मा समानरूपसे सब भूतों में व्यापित हैं।

मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ १६७ ॥
सप्तसागरपर्य्यन्ततीर्थस्नानादिकैः फलम् ।
गुरोरङ्घ्रिपयोबिन्दुसहस्रांशेन दुर्लभम् ॥ १६८ ॥
गुरुरेव जगत्सर्व्वं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नाऽस्ति तस्मात् सम्पूजयेद्गुरुम् ॥ १६९ ॥
ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभते गुरुभक्तितः ।
गुरोः परतरं नाऽस्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिणा ॥ १७० ॥
गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुसदाशिवाः ।
सृष्ट्यादिकसमर्थास्ते केवलं गुरुसेवया ॥ १७१ ॥
देवकिन्नरगन्धर्व्वाः पितरो यक्षचारणाः ।
मुनयोऽपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणाविधिम् ॥ १७२ ॥ *

गुरुके श्री चरणकमलकी पूजा ही सब पूजाओंका मूल है, गुरुवाक्य ही सब मन्त्रोंका मूल है और गुरुकी कृपाही मुक्ति प्राप्त करनेका प्रधान कारण है ॥१६७॥ सप्त समुद्र पर्य्यन्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल लाभ होता है, गुरुके चरणकमलोंके एक बिन्दु चरणामृत पान करनेसे उससे अधिक फल होता है; इस कारण गुरुपादपद्म-जल सहस्र-अंशेन पवित्र और दुर्ल्लभ है ॥ १६८ ॥ गुरुही ब्रह्मा, विष्णु और शिव, इन त्रिदेवरूपोंसे समस्त विश्वमें व्यापित हैं, गुरुकी अपेक्षा और कोई श्रेष्ठ नहीं है इस कारण गुरुकी पूजा करना सदा उचित है॥१६९॥ गुरुके प्रति भक्ति करनेसे ज्ञानके विना भी मुक्तिपद लाभ होसक्ता है। श्रीगुरुदेवसे परे और कुछ भी नहीं है, इस कारण गुरुपथावलम्बी साधकगणको ऐसे गुरुदेवका ध्यान करना उचित है ॥१७०॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता केवल एकमात्र श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही और गुरुसेवाके फलसे ही सृष्टि, पालन और प्रलय क्रिया करनेमें समर्थ हुए हैं ॥ १७१ ॥ देवतागण, किन्नर-गण, गन्धर्व्वगण, पितृगण, यक्षगण, चारणगण और मुनिगण कोई

* श्रीगुरुदेव जब सबसे बड़े हैं तब उनकी सेवा कौन करनेमें समर्थ हो सक्ता है? अर्थात् गुरुसेवा अतिशय कठिन है।

न मुक्ता देवगन्धर्व्वाः पितरो यक्षकिन्नराः।
ऋषयः सर्व्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः॥ १७३॥
श्रुतिस्मृतिमविज्ञाय केवलं गुरुसेवया।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः॥ १७४॥
गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामो हि लभ्यते।
अनेन गुरुमार्गेण आत्मज्ञानं प्रवर्त्तते॥ १७५॥ *
सर्व्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्।
सर्व्वतीर्थावगाहस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्॥ १७६॥
यज्ञव्रततपोदानजपतीर्थाऽनुसेवनम्।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय निष्फलं नाऽत्र संशयः॥ १७७॥
मन्त्रराजमिदं देवि! गुरुरित्यक्षरद्वयम्।

भी गुरुसेवाकी विधि नहीं जानते॥१७२॥ देवगण, गन्धर्व्वगण, पितृगण, यक्षगण, किन्नरगण, ऋषिगण और सब सिद्धगणके बीचमें जो कोई गुरुसेवापराङ्मुख हो सो कदापि मुक्ति-लाभ करनेमें समर्थ न होगा॥१७३॥ जो वेद और स्मृति आदि शास्त्र न पढ़कर और केवल गुरुसेवा द्वारा काल व्यतीत करते हैं वे भी संन्यासी कहाते हैं और जो लोग संन्यासी होकर गुरुसेवा नहीं करते वे केवल वेषधारी मात्र हैं॥१७४॥ केवल गुरुकृपाके बलसे ही आत्माराम पद लाभ होता है, गुरुपथ अवलम्बन द्वारा ही आत्मज्ञान उदय होता है॥१७५॥ श्रीगुरुदेवकी चरण सेवा करने पर जीवात्मा सब पापोंसे मुक्त और पवित्र होजाता है और सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे जितना फल होता है उसको उतना फल लाभ होता है इसमें कोई सन्देह नहीं॥ १७६॥ गुरुतत्त्व न जानकर जो यज्ञ, व्रत, तपस्या, दान, जप और तीर्थ-स्नान आदि कार्य्य करते हैं वह सब निष्फल होता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं॥ १७७॥ हे देवि! "गुरु" यह दोनों अक्षर सब मन्त्रों-

* इसमें कोई सन्देह नहीं कि जगद्गुरु श्रीभगवान्की कृपासे ही जीवगण आत्मारामरूप मुक्तिपद प्राप्त करते हैं; और इसमें भी सन्देहमात्र नहीं कि साक्षात् भगवद्रूप श्रीगुरुदेवकी सेवामें युक्त होकर उनके उपदेश किये हुए पथ पर जो चलता है वही आत्मज्ञान लाभ करसक्ता है।

श्रुतिर्वेदान्तवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥ १७८ ॥
गुरुर्देवो गुरुर्धर्म्मो गुरुनिष्ठा परं तपः ।
गुरोः परतरं नास्ति नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥ १७९ ॥
धन्या माता पिता धन्यो धन्यो वंशः कुलं तथा ।
धन्या च वसुधा देवि ! गुरुभक्तिः सुदुर्लभा ॥ १८० ॥
शरीरमिन्द्रियप्राणा अर्थस्वजनबान्धवाः ।
माता पिता कुलं देवि ! गुरुरेव न संशयः ॥ १८१ ॥
आजन्मकोट्यां देवेशि ! जपव्रततपःक्रियाः ।
एतत्सर्व्वं समं देवि ! गुरुसन्तोषमात्रतः ॥ १८२ ॥
विद्याधनमदेनैव मन्दभाग्याश्च ये नराः ।
गुरोः सेवां न कुर्व्वन्ति सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ १८३ ॥
गुरुसेवापरं तीर्थमन्यत्तीर्थमनर्थकम् ।

से श्रेष्ठ हैं। श्रुति और वेदान्तवाक्य द्वारा यही निश्चय कियागया है कि गुरु ही साक्षात् परमपद है; अर्थात् श्रीगुरुदेव ही ब्रह्मरूप हैं ॥१७८॥ गुरु ही देवतारूप, गुरु ही धर्म्मरूप और गुरुमें निष्ठा ही परम तपस्यारूप है इस कारण गुरु की अपेक्षा श्रेष्ठ वस्तु और श्रेष्ठ तत्त्व और कुछ भी नहीं है॥१७९॥ हे देवि! गुरुभक्ति दुर्लभ है जिसके हृदयमें वह भक्ति उदय हुआ करती है उसकी माता धन्य है, पिता धन्य है, उसका वंश और कुल धन्य है और वह जिस पृथिवीमें वास करता है वह पृथिवी भी धन्य है ॥ १८० ॥ हे देवि ! शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अर्थ, अपने स्वजन, सुहृत्, माता, पिता और कुल यह सब ही गुरुस्वरूप हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं ॥ १८१ ॥ हे देवेशि ! कोटि कोटि जन्म में जो जप, व्रत, तपस्या और सत्क्रिया का अनुष्ठान किया जाता है, एकमात्र श्रीगुरुदेवकी सन्तुष्टता हीसे उन सबके समान फल लाभ हुआ करता है ॥ १८२ ॥ जो मनुष्यगण विद्या और धन आदि के अहंकार से गुरुसेवा नहीं करते मैं सत्य सत्य ही कहता हूं कि उनका भाग्य मन्द है ॥ १८३ ॥ हे देवि ! गुरुसेवा ही सकल

सर्व्वतीर्थाश्रयं देवि ! सद्गुरोश्चरणाम्बुजम् ॥ १८४ ॥ *
गुरुध्यानं महापुण्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
वक्ष्यामि तव देवेशि ! शृणुष्व कमलानने ! ॥ १८५ ॥
प्रातः शिरासि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराऽभयकरं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्व्वकम् १८६ ॥
वामोरुशक्तिसहितं कारुण्येनाऽवलोकितम् ।
प्रियया सव्यहस्तेन धृतचारुकलेवरम् ॥ १८७ ॥
वामेनोत्पलधारिण्या रक्ताऽऽभरणभूषया ।
ज्ञानाऽऽनन्दसमायुक्तं स्मरेत्तन्नामपूर्व्वकम् ॥ १८८ ॥
अखण्डमण्डलाऽऽकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तीर्थोंकी अपेक्षा प्रधान तीर्थ है, गुरुके सम्मुख और तीर्थ वृथा हैं, सद्गुरुके पादपद्म ही और तीर्थोंके अवलम्बन हैं ॥१८४॥ हे कमलानने ! हे सुरेश्वरि ! मैं तुम्हारे निकट गुरु-ध्यान कहता हूँ श्रवण करो । इस गुरु-ध्यानसे महापुण्य लाभ होता है और एकाधारमें यह भोग और मुक्ति प्रदान किया करता है ॥ १८५ ॥ वे मस्तकस्थित सहस्रदलकमल पर विराजित हैं, उनके दो नेत्र और दो बाहु हैं और जो अपने दो हाथोंमेंसे एकमें वर और दूसरेमें अभयको धारण कर रहे हैं; ऐसे प्रशान्तमूर्ति गुरुदेवका नामोच्चारणपूर्वक प्रातःकालमें स्मरण करना उचित है ॥ १८६ ॥ वे दयापूर्ण दृष्टिसे समस्त संसारको देख रहे हैं; उनके वाम उरु पर उनकी शक्ति देवी विराजित हैं, जो देवी रक्त अलंकारसे भूषित हैं, जिनके वाम हस्तमें कमलपुष्प है और जो अपने दक्षिण हस्तसे निजपतिके चारु कलेवरको धारण कर रही हैं; इस प्रकारके ज्ञानानन्द पूर्ण गुरुदेवको चिन्तन करना उचित है ॥ १८७-१८८ ॥ संख्या १८६ श्लोकसे

*धर्म्म के साधन में श्रीगुरुदेव ही कारण हैं,इस कारण उनकी सेवा से सर्व्वोत्तम फल की प्राप्ति हुआ करती है। तीर्थादि धर्म्म जगतमें अद्भुत और तुरन्त फलके दाता हैं, परन्तु जब धर्म्मसाधनमें श्रीगुरुदेव ही कारण हैं तो उनकी सेवा से जो फल की प्राप्ति हुआ करती है उसके समान तीर्थसेवन का फल कदापि नहीं होसक्ता और इसी कारणसे गुरुचरणोंकी भक्ति विना कोई तीर्थ भी फलदान में समर्थ नहीं होते ।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ १८९ ॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै इष्टदेवस्वरूपिणे ।
यस्य वाक्याऽमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञितम् ॥ १९० ॥

श्रीमहादेव्युवाच ।

मदेकहृदयाऽऽनन्द ! जगदात्मन् ! महेश्वर ! ।
उपास्यस्य रहस्यं मे माहात्म्यञ्चापि सद्गुरोः ॥ १९१ ॥
वर्णितं यत्त्वया नाथ ! कृतकृत्याऽस्मि साम्प्रतम् ।
भूयोऽपि श्रोतुमिच्छामि त्वन्मुखाज्जगदीश्वर ! ॥ १९२ ॥
परतत्त्वैकरूपस्य तत्त्वाऽतीतपराऽऽत्मनः ।
समासेन स्वरूपं मे वर्णयित्वा कृपां कुरु ॥ १९३ ॥

श्रीमहादेव उवाच ।

स एक एव सद्रूपः सत्योऽद्वैतः परात्परः ।
स्वप्रकाशः सदा पूर्णः सच्चिदानन्दलक्षणः ॥ १९४ ॥
निर्विकारो निराधारो निर्विशेषो निराकुलः ।

लेकर १८८ तकमें जिस प्रकारका ध्यान वर्णित है उस रीतिपर श्रीगुरुदेवका ध्यान करना उचित है; तत्पश्चात् मानस उपचार द्वारा गुरुपूजा करके पुनः उपर्य्युक्त श्लोक-द्वय द्वारा श्रीगुरुदेवको प्रणाम करना उचित है। इन दोनों श्लोकोंमेंसे पूर्वका अर्थ होचुका है, इसकारण पुनरुक्ति नहीं कीगई दूसरेका अर्थ यह है, इष्टदेव स्वरूप उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है कि जिनका वाक्यामृत संसाररूप विषको नाश करता है ॥ १८९–१९० ॥

श्रीमहादेवी बोली ।

हे जगदात्मन्! हे महेश्वर! हे मेरे हृदयनाथ! आपने जो इस समय गुरुदेवका माहात्म्य और उपास्यका रहस्य सब कुछ वर्णन किया जिससे मैं कृतकृत्य हुई। अब जगदाधार तत्त्वातीत परमतत्त्वरूपी परमात्माका स्वरूप संक्षेपरूपसे वर्णन करके मुझे कृतार्थ कीजिये॥१९१–१९३॥

श्रीमहादेव बोले ।

वह एक, अद्वितीय, सत्य, नित्य, परात्पर, स्वप्रकाश, सदापूर्ण और सच्चिदानन्दरूप है ॥१९४॥ वह निर्विकार, निराधार, निर्विशेष,

गुणातीतः सर्व्वसाक्षी सर्व्वात्मा सर्व्वदृग्विभुः ॥ १९५ ॥
गूढः सर्व्वेषु भूतेषु सर्व्वव्यापी सनातनः।
सर्व्वेन्द्रियगुणाभासः सर्व्वेन्द्रियविवर्जितः ॥ १९६ ॥
लोकाऽतीतो लोकहेतुरवाङ्मनसगोचरः।
स वेत्ति विश्वं सर्व्वज्ञस्तं न जानाति कश्चन ॥ १९७ ॥
तदधीनं जगत्सर्व्वं त्रैलोक्यं सचराऽचरम्।
तदालम्बनतस्तिष्ठेदवितर्क्यमिदं जगत् ॥ १९८ ॥
तत्सत्यतामुपाऽऽश्रित्य सद्वद्भाति पृथक् पृथक्।
तेनैव हेतुभूतेन वयं जाता महेश्वरि ! ॥ १९९ ॥
कारणं सर्व्वभूतानां स एकः परमेश्वरः।
लोकेषु सृष्टिकरणात्स्रष्टा ब्रह्मेति गीयते ॥ २०० ॥
विष्णुः पालयिता देवि ! संहर्त्ताऽहं तदिच्छया।
इन्द्राऽऽदयो लोकपालाः सर्व्वे तद्वशवर्त्तिनः ॥ २०१ ॥
स्वे स्वेऽधिकारे निरतास्ते शासति तदाज्ञया।

निराकुल, गुणातीत, सर्वसाक्षी, सर्वात्मा, सबोंको देखनेवाला और व्यापक है ॥१९५॥ वह सर्वव्यापी सनातन गूढभावसे सब जीवोंमें अवस्थित है, सम्पूर्ण इन्द्रिय-शक्तियोंका प्रकाशक होनेपर भी समस्त इन्द्रियोंसे रहित है ॥१९६॥ वह लोकका कारण होने पर भी लोकसे अतीत है और वह मन और वचन दोनों से परे है, वह सर्वज्ञ सबको जानता है परन्तु उसको कोई नहीं जानता ॥ १९७ ॥ चराचरपूर्ण त्रैलोक्य उसके आधीन है उसीके अवलम्बनसे यह अवितर्क्य विस्तृत जगत् ठहरा हुआ है ॥ १९८ ॥ यह असत्य जगत् उसीकी सत्यता पाकर सत्यके ऐसा पृथक् पृथक् शोभता है, हे महेश्वरि ! उन्हींके द्वारा हमलोग उत्पन्न हुए हैं ॥ १९९ ॥ वही एक परमेश्वर सब प्राणियोंका कारण है, लोकमें सृष्टि करनेके कारण वह सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा कहा जाताहै ॥२००॥ हे देवि ! उसी की इच्छासे विष्णु पालन तथा मैं संहार करता हूं, इन्द्रादिक देवता सब उसी के वशवर्त्ती हैं ॥ २०१ ॥ और उसकी आज्ञासे अपने अपने

त्वं पुरा प्रकृतिस्तस्य पूज्याऽसि भुवनत्रये ॥ २०२ ॥
तेनाऽन्तर्यामिरूपेण तत्तद्विषययोजिताः ।
स्वस्वकर्म्म प्रकुर्व्वन्ति न स्वतन्त्राः कदाचन ॥ २०३ ॥
यद्भयाद्वाति वातोऽपि सूर्य्यस्तपति यद्भयात् ।
वर्षन्ति तोयदाः काले पुष्प्यन्ति तरवो वने ॥ २०४ ॥
कालं कलयते काले मृत्योर्मृत्युर्भियो भयम् ।
वेदान्तवेद्यो भगवान्यत्तच्छब्दोपलक्षितः ॥ २०५ ॥
सर्व्वे देवाश्च देव्यश्च तन्मयाः सुरवन्दिते ! ।
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं तन्मयं सकलं जगत् ॥ २०६ ॥
तस्मिँस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ।
तदाराधनतो देवि ! सर्व्वेषां प्रीणनं भवेत् ॥ २०७ ॥
तरोर्मूलाऽभिषेकेण यथा तद्भुजपल्लवाः ।
तृप्यन्ति तदनुष्ठानात्तथा सर्व्वेऽमरादयः ॥ २०८ ॥

अधिकारोंमें रहकर जगत्‌का शासन करते हैं । तुम उसकी प्रधान प्रकृति हो इसलिये तीनों भुवनमें तुम पूज्य हो ॥ २०२ ॥ हम उस अन्तर्यामीसे उन २ विषयोंमें नियोजित होकर अपने २ कार्य्योंको करते हैं कोई भी कभी स्वतन्त्र नहीं है ॥ २०३ ॥ जिसके भयसे वायु चलती है, सूर्य्य तपता है, मेघ वर्षते हैं और समयपर वृक्ष पुष्पित होते हैं, जो प्रलयकालमें कालको भी कवलित करजाता है और जो मृत्यु की मृत्यु एवं भयका भी भय है ॥ २०४-२०५ ॥ जो वेदान्तवेद्य प्रभु यत् और तत् शब्द से उपलक्षित होता है हे देववन्दिते ! देवि ! सम्पूर्ण देव और देवीगण तथा ब्रह्मसे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त जगत् तद्रूप है ॥ २०६ ॥ उसके सन्तुष्ट होनेसे जगत् सन्तुष्ट और उसके तृप्त होनेसे जगत् तृप्त होता है; हे देवि ! उसी की आराधना से सब तृप्त होते हैं ॥२०७॥ जैसे वृक्षके मूलमें सिञ्चन करनेसे उसके शाखा पल्लव सब तृप्त होते हैं उसी प्रकार भगवान्‌के अनुष्ठानसे सब देवगण तृप्त और प्रसन्न होते हैं ॥ २०८ ॥

श्रीमहादेव्युवाच।

संसाररोगहृन्नाथ! करुणावरुणाऽऽलय!।
गुरोर्माहात्म्यपूर्णा या गुरोर्गीता सुवर्णिता॥ २०९॥
तत्स्वाध्यायस्य माहात्म्यं फलञ्चाऽपि विनिर्दिश।
जीवमङ्गलमेतेन कृपातोऽतः कृपाऽर्णव!॥ २१०॥
सम्यग्विविच्य संवर्ण्य विनोदय दयार्णव!।
त्वदृते को हि देवेश! शिक्षां मेऽन्यो विधास्यति॥ २११॥

श्रीमहादेव उवाच।

इदं तु भक्तिभावेन पठ्यते श्रूयतेऽथवा।
लिखित्वा वा प्रदीयेत सर्व्वकामफलप्रदम्॥ २१२॥
गुरुगीताऽभिधं देवि! शुद्धं तत्त्वं मयोदितम्।
भवव्याधिविनाशार्थं स्वयमेव सदा जपेत्॥ २१३॥
गुरुगीताऽक्षरैकैकं मन्त्रराजमिदं प्रिये!।
अनेन विविधा मन्त्राः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ २१४॥

श्रीमहादेवी बोलीं।

हे कृपानिधे! संसार-दुःखके मेटनेवाले! गुरुमाहात्म्यपूर्ण गुरुगीताका जो आपने वर्णन किया, इसके पाठका क्या माहात्म्य है सो कृपापूर्वक जीवोंके कल्याणार्थ वर्णन करके मुझे सुखी करिये। हे देवेश! आपके बिना और कौन मुझे शिक्षा देगा॥ २०९-२११॥

श्रीमहादेव बोले।

इस गुरुगीता को भक्तिपूर्वक पाठ, श्रवण अथवा लिखकर दान करनेसे सकल प्रकारकी वासना पूर्ण होती है॥ २१२॥ हे देवि! संसाररूप रोगसे मुक्त होनेके निमित्त इस गुरुगीता नामक पवित्र तत्त्वको मैंने प्रकट किया है। शिष्यगणको उचित है कि वे स्वयं इसको सर्वदा पाठ करें॥ २१३॥ हे प्रिये! इस गुरुगीताका एक एक अक्षर एक एक प्रधान मन्त्ररूप है; इसके सिवाय और और मन्त्र-समूह इसके षोडश अंशके तुल्य भी नहीं हैं॥ २१४॥

सर्व्वपापहरं स्तोत्रं सर्वदारिद्र्यनाशनम् ।
अकालमृत्युहरणं सर्व्वसंकटनाशनम् ॥ २१५ ॥
यक्षराक्षसभूतानां चौरव्याघ्रभयाऽपहम् ।
महाव्याधिहरञ्चैव विभूतिसिद्धिदं ध्रुवम् ॥ २१६ ॥
मोहनं सर्व्वभूतानां परं बन्धनमोचनम् ।
देवभूनप्रियकरं लोकान्स्ववशमानयेत् ॥ २१७ ॥
मुखस्तम्भकरं नृणां सद्गुणानां विवर्द्धनम् ।
दुष्कर्म्मनाशनञ्चैव सत्कर्म्मसिद्धिदं भवेत् ॥ २१८ ॥
भक्तिदं सिद्ध्येत् कार्य्यं नवग्रहभयाऽपहम् ।
दुःस्वप्ननाशनञ्चैव सत्कर्म्मसिद्धिदं भवेत् ॥ २१९ ॥
सर्व्वशान्तिकरं नित्यं वन्ध्यापुत्रफलप्रदम् ।

यह गुरुगीता सब प्रकारके पापोंको नाश करती है, सकल प्रकारके दारिद्र्यको दूर करती है, अकालमृत्यु निवारण करती है और सब विपदोंको नाश कर देती है ॥ २१५ ॥ इस गुरुगीताके पाठसे यक्ष, राक्षस, भूत, चौर और व्याघ्र आदिका भय नहीं रहता; इससे महाव्याधिका नाश और सम्पत्तियोंकी प्राप्ति हुआ करती है ॥२१६॥ यह गुरुगीता सकल जीवोंका मन मुग्ध करती है, संसारबन्धनसे मुक्तिलाभ करनेका प्रधान उपाय है और देवता और राजागणको प्रसन्न करनेवाली है और जो मनुष्य इसको पाठ करता है वह सकल लोकोंको अपने वशमें करलेता है ॥ २१७ ॥ यह गुरुगीता वादी मनुष्यगणकी वाक्शक्तिकी निरोधक, सारे सद्गुणोंकी वर्धक, पाप-कर्म्मोंकी विनाशक और धर्म्म कर्म्मको फल-प्रदानकारक है ॥२१८॥ इस भक्तिप्रद, नवग्रह-भयनिवारक गुरुगीताके पाठ करनेसे अभिलषित कार्य्य सिद्ध होते हैं, इसके पाठ द्वारा दुःस्वप्नोंका दोष दूर और सत्कर्म्मका तुरन्त फल प्राप्त हुआ करता है ॥ २१९ ॥ इस गुरुगीताके पाठ करनेसे सर्व्वदा जीवगण विपद्से बच सक्ते हैं और इसके पाठ करनेसे वन्ध्या नारी पुत्रफल प्रसव करती है

अवैधव्यकरं स्त्रीणां सौभाग्यदायकं परम् ॥ २२० ॥
आयुरारोग्यमैश्वर्य्यपुत्रपौत्रादिवर्द्धकम् ।
निष्कामतस्त्रिवारं वा जपन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥ २२१ ॥
सर्वदुःखभयं विघ्नं नाशयेत्तापहारकम् ।
सर्व्वबाधाप्रशमनं धर्माऽर्थकाममोक्षदम् ॥ २२२ ॥
यो यं चिन्तयते कामं स तमाप्नोति निश्चितम् ।
कामिनां कामधेनुश्च कल्पितं च सुरद्रुमः ॥ २२३ ॥
चिन्तामणिं चिन्तितस्य सर्व्वमङ्गलकारकम् ।
जपेच्छाक्तश्च शैवश्च गाणपत्यश्च वैष्णवः ॥ २२४ ॥
सौरश्च सिद्धिदं देवि ! धर्म्मार्थकाममोक्षदम् ।
संसारमलनाशाऽर्थं भवतापनिवृत्तये ॥ २२५ ॥

और नारीगणकी वैधव्य-यन्त्रणा दूर होजाती है और वे परम सौभाग्यको प्राप्त होजाती हैं ॥ २२० ॥ कामनाशून्य होकर इस गुरुगीताको थोड़ा भी पाठ करनेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य्य, पुत्र और पौत्र आदिकी वृद्धि होती है और वह पाठ-कर्त्ता अनायास-से ही मोक्ष पद प्राप्त करनेमें समर्थ होजाता है ॥ २२१ ॥ इस सन्तापहारी गुरुगीताके पाठसे सकल प्रकारका दुःख, भय और विघ्न नाश हो जाता है; सकल प्रकारकी विपदोंकी शान्ति होती है और धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी चतुर्वर्ग लाभ होता है ॥ २२२ ॥ जो मनुष्य जिस प्रकारकी कामना करके इस गुरुगीता-का पाठ करता है, वह उसी फलको प्राप्त करता है इसमें कोई भी सन्देह नहीं । यह गुरुगीता कामीगणके लिये कामधेनु और कल्पित कल्पवृक्षरूप है; अर्थात् सकाम होकर पाठ करनेसे इसके द्वारा कामनाकी सिद्धि होती है और निष्काम होके पाठ करनेसे मुक्ति-पदकी प्राप्ति होती है ॥ २२३ ॥ हे देवि ! यह गुरुगीता धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चतुर्वर्ग प्रदान करती है, यह चिन्तामणिरूप होकर चिन्तन किया हुआ अर्थ प्रदान करती है और सर्व प्रकारके मङ्गलोंका कारण है इस कारण क्या शाक्त, क्या वैष्णव, क्या

गुरुगीताऽम्भसि स्नानं तत्त्वज्ञः कुरुते सदा।
योगयुञ्जानचित्तानां गीतेयं ज्ञानवर्द्धिका ॥ २२६ ॥
त्रितापतापितानाञ्च जीवानां परमौषधम्।
संसाराऽपारपाथोधौ मज्जतां तरणिः शुभा ॥ २२७ ॥
देशः शुद्धः स यत्राऽसौ गीता तिष्ठति दुर्लभा।
तत्र देवगणाः सर्व्वे क्षेत्रपीठे वसन्ति हि ॥ २२८ ॥
शुचिरेव सदा ज्ञानी गुरुगीताजपेन तु।
तस्य दर्शनमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २२९ ॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं निजधर्म्मो मयोदितः।
गुरुगीतासमो नाऽस्ति सत्यं सत्यं वरानने ! ॥ २३० ॥

इति श्रीगुरुगीता समाप्ता।

शैव, क्या गाणपत्य और क्या सौर्य्य, सब प्रकारके उपासकगण ही इसके पाठ द्वारा सिद्धि प्राप्त करसक्ते हैं। तत्त्वज्ञानी मनुष्यगण संसार-तापके विनाशार्थ और भव-दुःख-निवारणार्थ इस गुरुगीतारूप तरङ्गिणीमें सदा स्नान किया करते हैं। यह गीता योगाभ्यासनिरत व्यक्तियोंके लिये ज्ञानवर्द्धिनी है ॥ २२४-२२६ ॥ त्रितापतापित जीवों केलिये यह परम औषधरूपा है और संसार महासागरमें डूबने वालोंके लिये यह शुभ नौका है ॥ २२७ ॥ यह सुदुर्लभा गुरुगीता जिस स्थानमें रहती है उस स्थानको परम पवित्र, सिद्ध-स्थान और पीठस्थानके तुल्य समझना उचित है; उस स्थानमें सकल देवतागण आकर वास किया करते हैं ॥ २२८ ॥ ज्ञानी मनुष्यगण गुरुगीताको पाठ करके सदा पवित्र रहते हैं, ऐसे पवित्र मनुष्योंके दर्शन करनेसे पुनः जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता है ॥ २२९ ॥ हे चारुमुखि ! मैं पुनः पुनः कहता हूं कि यह परमात्मरूप स्वधर्म्म जो मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया वह सत्य ही है; इस गुरुगीताके तुल्य और कोई भी पदार्थ नहीं है; यह वाक्य सत्य सत्य ही जानना [illegible]

इति श्रीगुरुगीता समाप्ता।

श्रीविश्वनाथो जयति।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन।

समाजकी भलाई! मातृभाषाकी उन्नति!!

देशसेवाका विराट् आयोजन!!!

इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे हो सकता है? संसारके इस छोरसे उस छोरतक चाहे किसी चिन्ताशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि धर्मभावके प्रचारसे, क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है। भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधःपतित और हीन दीन दशामें क्यों पड़ रहा है? इसका भी उत्तर यही है कि वह धर्मभावको खो बैठा है। यदि हम भारतसे ही पूछें कि तू अपनी उन्नतिके लिये हमसे क्या चाहता है? तो वह यही उत्तर देगा कि मेरे प्यारे पुत्रो! धर्मभाव की वृद्धि करो। संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हैं, उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि ऐसे कार्यों में कैसे विघ्न और कैसी बाधाएँ उपस्थित हुआ करती हैं। यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासम्भव उनसे लाभ ही उठाते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उनके कार्योंमें उन विघ्न बाधाओंसे कुछ रुकावट अवश्य ही हो जाती है। श्रीभारतधर्म महामण्डलके धर्मकार्यमें इस प्रकार अनेक बाधाएँ होनेपर भी अब उसे जनसाधारणका हित साधन करनेका सर्वशक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया है। भारत अधार्मिक नहीं है, हिन्दूजाति धर्मप्राण जाति है, उसके रोम-रोम में धर्मसंस्कार ओतप्रोत है। किंतु वह अपने रूपको—धर्मभावको—भूल रही है। उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना—धर्मभावना स्थिर रखना—ही श्रीभारतधर्ममहामण्डलका एक पवित्र और प्रधान उद्देश्य है। यह कार्य १६ वर्षों से महामण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों उसको अधिक सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यों वह जोर शोर से यह काम करेगा। उसका विश्वास है कि इसी

उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्य साधनके लिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकों द्वारा धर्मप्रचार करना और (२) धर्मरहस्य सम्बन्धी मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाश करना। महामण्डलने प्रथम मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है और अब तो उपदेशक महाविद्यालय स्थापित कर महामण्डलने वह मार्ग स्थिर और परिष्कृत करलिया है। दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथायोग्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है। विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिक पत्रिकाओं का सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रन्थोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्त की है; परन्तु अभीतक यह कार्य संतोषजनक नहीं हुआ है। महामण्डलने अब इस विभाग को उन्नत करने का विचार किया है। उपदेशकों द्वारा जो धर्मप्रचार होता है उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेके लिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम आवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो चार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन विना पुस्तकोंका सहारा लिये नहीं हो सकता। इसके सिवाय सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये एक वक्ता कार्यकारी नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचार द्वारा यह काम सहल हो जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महामण्डल भी सब प्रकारके अधिकारियों के योग्य पुस्तकें निर्माण करेगा। सारांश, देशकी उन्नतिके लिये, भारत गौरवकी रक्षाके लिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेके लिये महामण्डलने अब पुस्तक प्रकाशन विभागको अधिक उन्नत करनेका विचार किया है और उसकी सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि वे ऐसे सत्कार्यमें इसका हाथ बटावें एवं इसकी सहायता कर अपनी ही उन्नति कर लेनेको प्रस्तुत हो जावें।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल के व्यवस्थापक पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी सहायतासे काशीके प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक, सुबोध और सुहृदयरूपसे यह ग्रन्थमाला निकलेगी। ग्रन्थमालाके जो ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सूची नीचे प्रकाशित की जाती है।

स्थिर ग्राहकोंके नियम ।

(१) इस समय हमारी ग्रन्थमालामें निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं:—

मंत्रयोगसंहिता (भाषानुवादसहित)	१)
भक्तिदर्शन (भाषाभाष्यसहित)	१)
योगदर्शन (भाषाभाष्यसहित नूतन संस्करण)	२)
नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत	१)
दैवीमीमांसादर्शन प्रथम भाग (भाषाभाष्यसहित)	१॥)
कल्किपुराण (भाषानुवादसहित)	१)
उपदेश पारिजात (संस्कृत)	॥)
गीतावली	॥)
भारतधर्ममहामण्डल रहस्य	१)
सन्यासगीता (भाषानुवादसहित)	॥।)
गुरुगीता (भाषानुवादसहित नूतनसंस्करण)	।)
धर्मकल्पद्रुम प्रथम खण्ड	२)
,, द्वितीय खण्ड	१॥)
,, तृतीय खण्ड	२)
,, चतुर्थ खण्ड	२)
,, पञ्चम खण्ड	२)
,, षष्ठ खण्ड	१॥)
श्रीमद्भगवद्गीता प्रथम खण्ड (भाषाभाष्यसहित)	१)
सूर्य्यगीता (भाषानुवादसहित)	॥)
शम्भुगीता (भाषानुवादसहित)	॥।)
शक्तिगीता (भाषानुवादसहित)	॥।)
धीशगीता (भाषानुवादसहित)	॥)
विष्णुगीता (भाषानुवादसहित)	॥।)

(२) इनमें से जो कमसे कम ४) मूल्य की पुस्तकें पूरे मूल्यमें खरीदेंगे अथवा स्थिर ग्राहक होनेका चन्दा १) भेज देंगे उन्हें शेष और आगे प्रकाशित होनेवाली सब पुस्तकें ३/४ मूल्यमें दी जायंगी।

(३) स्थिर ग्राहकोंको मालामें ग्रथित होनेवाली हर एक

पुस्तक खरीदनी होगी। जो पुस्तक इस विभाग द्वारा छापी जायगी वह एक विद्वानोंकी कमेटी द्वारा पसन्द करा ली जायगी।

(४) हर एक ग्राहक अपना नम्बर लिखकर या दिखाकर हमारे कार्यालयसे अथवा जहाँ वह रहता हो वहां हमारी शाखा हो तो वहांसे, स्वल्प मूल्य पर पुस्तकें खरीद सकेगा।

(५) जो धर्मसभा इस धर्म्मकार्य्यमें सहायता करना चाहे और जो सज्जन इस ग्रन्थमालाके स्थायी ग्राहक होना चाहें वे मेरे नाम पत्र भेजनेकी कृपा करें।

गोविन्द शास्त्री दुगवेकर,
अध्यक्ष शास्त्रप्रकाश विभाग
श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय,
जगतगंज, बनारस।

इस विभाग द्वारा प्रकाशित समस्त धर्मपुस्तकोंका विवरण।

सदाचारसोपान। यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंकी धर्म्मशिक्षाके लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगला भाषामें इसका अनुवाद होकर छपचुका है और सारे भारतवर्षमें इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गई है। इसकी पांच आवृत्तियां छपचुकी हैं। अपने बच्चोंको धर्म्मशिक्षाके लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दूको मँगवाना चाहिये। मूल्य -) एक आना।

कन्याशिक्षासोपान। कोमलमति कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। इस पुस्तककी बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। इसका बंगला अनुवाद छप चुका है। हिन्दूमात्रको अपनी अपनी कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह पुस्तक मँगवानी चाहिये। मूल्य =)

धर्म्मसोपान। यह धर्म्मशिक्षाविषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्म्मका साधारण ज्ञान भली भांति हो जाता है।

यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध स्त्री पुरुष, सबके लिये बहुत ही उपकारी है। धर्मशिक्षा पानेकी इच्छा करनेवाले सज्जन अवश्य इस पुस्तकको मँगावें। मूल्य ।) चार आना।

ब्रह्मचर्य्यसोपान। ब्रह्मचर्य्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रन्थकी पढ़ाई होनी चाहिये। मूल्य ≶)

राजशिक्षासोपान। राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया है; परन्तु सर्वसाधारणकी धर्म्मशिक्षाके लिये भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। इसमें सनातनधर्म्मके अङ्ग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य ≶) तीन आना।

साधनसोपान। यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुतही उपयोगी है। इसका बंगला अनुवाद भी छपचुका है। बालक बालिकाओंको पहलेहीसे इस पुस्तकको पढ़ना चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सके हैं।

मूल्य ≈) दो आना।

शास्त्रसोपान। सनातनधर्म्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित है। सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बीके लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है।

मूल्य ।) चार आना।

धर्म्मप्रचारसोपान। यह ग्रन्थ धर्मोपदेश देनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितोंके लिये बहुतही हितकारी है।

मूल्य ≶) तीन आना।

उपरि लिखित सब ग्रन्थ धर्म्मशिक्षाविषयक हैं इस कारण स्कूल, कालेज और पाठशालाओंको इकट्ठे लेने पर कुछ सुबिधा से मिल सकेंगे और पुस्तक विक्रेताओंको इनपर योग्य कमीशन दिया जायगा।

उपदेशपारिजात। यह संस्कृत पद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ है। सनातनधर्म्म क्या है, धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्म्मके सब शास्त्रों में क्या विषय हैं, धर्म्मवक्ता होनेके लिये किन २ योग्यताओं के

होनेकी आवश्यकता है इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थ में संस्कृत विद्वान्मात्रको पढ़ना उचित है और धर्म्मवक्ता, धर्म्मोपदेशक, पौराणिक परिडत आदिके लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य ॥) आठ आना।

इस संस्कृत ग्रन्थके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें योगदर्शन, सांख्यदर्शन, दैवीमीमांसादर्शन आदि दर्शन सभाष्य, मन्त्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता, राजयोगसंहिता, हरिहरब्रह्मसामरस्य, योगप्रवेशिका, धर्म्मसुधाकर, श्रीमधुसूदनसंहिता आदि ग्रन्थ छप रहे हैं और शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले हैं।

कल्किपुराण। कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रन्थ है। विशुद्ध हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्मजिज्ञासुमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है।

मूल्य १) एक रुपया।

योगदर्शन। हिन्दीभाष्य सहित। इसप्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नहीं हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्ववादिसम्मत दर्शन है और इसमें साधनके द्वारा अन्तर्जगत्के सब विषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करादेनेकी प्रणाली रहनेके कारण इसका पाठन और भाष्य एवं टीका निर्माण वही सुचारु रूपसे करसका है जो योगके क्रियासिद्धांशका पारगामी हो। इस भाष्यके निर्माणमें पाठक उक्त विषयकी पूर्णता देखेंगे। प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बनादिया गया है कि जिससे पाठकोंको मनोनिवेश पूर्वक पढ़ने पर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगी और ऐसा प्रतीत होगा कि महर्षि सूत्रकारने जीवोंके क्रमाभ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानो एक महान् राजपथ निर्माण करदिया है। इसका द्वितीय संस्करण छपकर तयार है, इसमें इस भाष्यको और भी सुस्पष्ट परिवर्द्धित और सरल किया गया है।

मूल्य २) रुपया।

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत। भारतके प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है।

मूल्य १) एक रुपया।

श्रीभारतधर्ममहामण्डलरहस्य। इस ग्रन्थमें सात अध्याय हैं। यथा—आर्यजातिकी दशाका परिवर्त्तन, चिन्ताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधिप्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञ-साधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजातिकी उन्नतिके विषयका असाधारण ग्रन्थ है। प्रत्येक सनातनधर्म्मावलम्बीको इस ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। द्वितीयावृत्ति छप चुकी है, इसमें बहुतसा विषय बढ़ाया गया है। इस ग्रन्थका आदर सारे भारतवर्ष में समान रूपसे हुआ है। धर्म्मके गूढ़ तत्त्व भी इसमें बहुत अच्छी तरह से बताये गये हैं। इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है। मूल्य १) एक रुपया।

निगमागमचन्द्रिका। प्रथम और द्वितीय भागकी दो पुस्तकें धर्म्मानुरागी सज्जनोंको मिल सकती हैं।

प्रत्येक का मूल्य १) एक रुपया।

पहले के पाँच सालके पाँच भागोंमें सनातनधर्म्मके अनेक गूढ़ रहस्यसम्बन्धी ऐसे २ प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं कि आजतक वैसे धर्म्मसम्बन्धी प्रबन्ध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। जो धर्मके अनेक रहस्य जानकर तृप्त होना चाहें वे इन पुस्तकोंको मँगावें। मूल्य पांचों भागों का २॥) रुपया।

भक्तिदर्शन। श्रीशाण्डिल्यसूत्रों पर बहुत विस्तृत हिन्दी भाष्यसहित और एक अति विस्तृत भूमिकासहित यह ग्रन्थ प्रणीत हुआ है। हिन्दीका यह एक असाधारण ग्रन्थ है। ऐसा भक्तिसम्ब-न्धी ग्रन्थ हिन्दीमें पहले प्रकाशित नहीं हुआ था। भगवद्भक्तिके विस्तारित रहस्योंका ज्ञान इस ग्रन्थके पाठ करनेसे होता है। भक्तिशास्त्रके समझनेकी इच्छा रखनेवाले और श्रीभगवान्में भक्ति करने वाले धार्मिकमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १)

गीतावली। इसको पढ़नेसे सङ्गीतशास्त्रका मर्म्म थोड़ेमें ही समझमें आसकेगा। इसमें अनेक अच्छे अच्छे भजनोंका भी संग्रह है। सङ्गीतानुरागी और भजनानुरागियोंको अवश्य इसको लेना चाहिये। मूल्य ॥) आठ आना।

मन्त्रयोगसंहिता। योगविषयक ऐसा अपूर्व ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें मन्त्रयोगके १६ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधनप्रणाली आदि सब अच्छीतरहसे वर्णन किये

गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते हैं। इसमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्यनिर्णय बहुत अच्छा किया गया है। घोर अनर्थकारी साम्प्रदायिक विरोध के दूर करनेके लिये यह एकमात्र ग्रन्थ है। इसमें नास्तिकोंके मूर्त्तिपूजा, मन्त्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं उनका अच्छा समाधान है।

मूल्य १) एक रुपयामात्र।

तत्त्वबोध। भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित। यह मूल ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्यकृत है। इसका बंगानुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। मूल्य =) दो आना।

दैवीमीमांसा दर्शन प्रथम भाग। वेदके तीन काण्ड हैं। यथाः-कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। ज्ञानकाण्डका वेदान्त दर्शन, कर्मकाण्ड का जैमिनी दर्शन और भरद्वाज दर्शन और उपासनाकाण्ड का यह अङ्गिरा दर्शन है। इसका नाम दैवी-मीमांसा दर्शन है। यह ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके चार पाद हैं. यथाः-प्रथम रसपाद, इस पाद में भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है। दूसरा सृष्टि पाद, तीसरा स्थिति पाद और चौथा लयपाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया, देवताओंके भेद, उपासनाका विस्तारित वर्णन और भक्ति और उपासनासे मुक्तिकी प्राप्तिका सब कुछ विज्ञान वर्णित है। इस प्रथम भागमें इस दर्शन शास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्यसहित प्रकाशित हुए हैं। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया।

श्रीभगवद्गीता प्रथमखण्ड। श्रीगीताजीका अपूर्व हिन्दी भाष्य यह प्रकाशित हो रहा है जिसका प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है प्रकाशित हुआ है। आज तक श्रीगीताजी पर अनेक संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं परन्तु इस प्रकारका भाष्य आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। गीताका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरूप, प्रत्येक श्लोकका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियोंके समझने योग्य गीता-विज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्यमें मौजूद है। मूल्य १) एक रुपया

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो,
महामण्डलभवन, जगतगंज, बनारस।

सप्त गीताएँ ।

पञ्चोपासनाके अनुसार पाँच प्रकारके उपासकोंके लिये पांच गीताएं-श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्य्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं सन्न्यासियोंके लिये सन्न्यासगीता और साधकोंके लिये गुरुगीता भाषानुवाद सहित छप चुकी हैं। श्रीभारतधर्म महामण्डलने इन सात गीताओंका प्रकाशन निम्न लिखित उद्देश्योंसे किया है:-१ म, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको धर्मके नामसे ही अधर्म सञ्चित करनेकी अवस्थामें पहुंचा दिया है, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको अहंकारत्यागी होनेके स्थानमें घोर साम्प्रदायिक अहंकारसम्पन्न बना दिया है, भारतकी वर्तमान दुर्दशा जिस साम्प्रदायिक विरोधका प्रत्यक्ष फल है और जिस साम्प्रदायिक विरोधने साकार-उपासकोंमें घोर द्वेषदावानल प्रज्वलित कर दिया है उस साम्प्रदयिक विरोधका समूल उन्मूलन करना और २ य, उपासनाके नामसे जो अनेक इन्द्रियासक्तिकी चरितार्थता के घोर अनर्थकारी कार्य होते हैं उनका समाजमें अस्तित्व न रहने देना तथा ३ य, समाजमें यथार्थ भगवद्भक्तिके प्रचार द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस-प्राप्तिमें अनेक सुविधाओंका प्रचार करना। इन सातों गीताओंमें अनेक दार्शनिक तत्त्व, अनेक उपासनाकाण्डके रहस्य और प्रत्येक उपास्य देवकी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सुचारुरूपसे प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीताएं उपनिषद्रूप हैं । प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवकी गीतासे तो लाभ उठावेगा ही, किन्तु, अन्य चार गीताओंके पाठ करनेसे भी वह अनेक उपासनातत्त्वोंको तथा अनेक वैज्ञानिक रहस्योंको जान लेगा और उसके अन्तःकरणमें प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे जैसा विरोध उदय होता है वैसा नहीं होगा और वह परमशान्तिका अधिकारी हो सकेगा। सन्न्यास गीतामें सब सम्प्रदायोंके साधु और सन्यासियोंके लिये सब जानने योग्य विषय सन्निविष्ट हैं। सन्न्यासिगण इसके पाठ करनेसे विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। गृहस्थोंके लिये भी यह ग्रन्थ धर्म्मज्ञानका भाण्डार है। श्रीमहामण्डलप्रकाशित गुरुगीताके सदृश ग्रन्थ आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें गुरु शिष्य

लक्षण, उपासनाका रहस्य और भेद, मन्त्र हठ लय और राजयोगोंके लक्षण और अङ्ग एवं गुरुमाहात्म्य, शिष्यकर्त्तव्य, परम तत्त्वका स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूपसे हैं। मूल, स्पष्ट सरल और सुमधुर भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ छपा है। गुरु और शिष्य दोनोंका उपकारी यह ग्रन्थ है। इसका अनुवाद बंगभाषामें भी छप चुका है। पाठक इन सातों गीताओंको मंगाकर देख सकते हैं, ये छप चुकी हैं। विष्णुगीताका मूल्य ॥।) सूर्यगीताका मूल्य ॥) शक्तिगीताका मूल्य ॥।) धीशगीताका मूल्य ॥) शंभुगीताका मूल्य ॥।) सन्न्यासगीताका मूल्य ॥।) और गुरुगीताका मूल्य ।) है। इनमेंसे पञ्चोपासनाकी पांचगीताओंमें एक एक तीनरंगा विष्णुदेव सूर्य्यदेव भगवती और गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है।

मैनेजर, निगमागम बुकडिपो,

महामण्डलभवन, जगतगंज बनारस।

धार्मिक विश्वकोष।

(श्रीधर्म्मकल्पद्रुम)

यह हिन्दूधर्म्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दू जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है उनमें से सबसे बड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्म्मग्रन्थकी थी कि, जिसके अध्ययन-अध्यापनके द्वारा सनातन धर्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपांगोंका यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथही साथ वेदों और सब शास्त्रोंका आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए सिद्धान्तोंका यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासुको भलीभाँति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्म्म महामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्रके अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजीने इस ग्रन्थका प्रणयन करना प्रारम्भ किया है। इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृतरूपसे दिये जायंगे। अबतक इसके छः खण्डोंमें जो अध्याय

प्रकाशित हुए हैं वे ये हैं:—धर्म्म, दानधर्म्म, तपोधर्म्म, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, ज्ञानयज्ञ, महायज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, दर्शनशास्त्र (वेदोपाङ्ग) स्मृतिशास्त्र, पुराणशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, उपवेद, ऋषि और पुस्तक, साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म, वर्णधर्म्म, आश्रमधर्म्म, नारी-धर्म्म (पुरुषधर्म्मसे नारीधर्म्मकी विशेषता), आर्य जाति, समाज और नेता, राजा और प्रजाधर्म, प्रवृत्तिधर्म्म और निवृत्तिधर्म, आपद्धर्म, भक्ति और योग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, गुरु और दीक्षा, वैराग्य और साधन, आत्मतत्त्व, जीवतत्त्व, प्राण और पीठतत्त्व, सृष्टि स्थिति प्रलयतत्त्व, ऋषि देवता और पितृतत्त्व अवतारतत्त्व, मायातत्त्व, त्रिगुणतत्त्व, त्रिभावतत्त्व, कर्म्मतत्त्व, मुक्ति-तत्त्व, पुरुषार्थ और वर्णाश्रमसमीक्षा, दर्शनसमीक्षा, धर्मसम्प्रदाय-समीक्षा, धर्मपन्थसमीक्षा और धर्ममतसमीक्षा । आगेके खण्डोंमें प्रकाशित होनेवाले अध्यायोंके नाम ये हैं:—साधनसमीक्षा, चतुर्दशलोकसमीक्षा, कालसमीक्षा, जीवन्मुक्ति-समीक्षा, सदाचार, पञ्च महायज्ञ, आह्निककृत्य, षोडश संस्कार, श्राद्ध, प्रेतत्व और परलोक, सन्ध्या तर्पण, ओंकार-महिमा और गायत्री, भगवन्नाम माहात्म्य, वैदिक मन्त्रों और शास्त्रोंका अपलाप, तीर्थ-महिमा, सूर्य्यादिग्रह-पूजा, गोसेवा, संगीत-शास्त्र, देश और धर्म सेवा इत्यादि इत्यादि । इस ग्रन्थसे आजकलके अशास्त्रीय और विज्ञान रहित धर्म्मग्रन्थों और धर्मप्रचारके द्वारा जो हानि हो रही है वह सब दूर होकर यथार्थ रूपसे सनातन वैदिक धर्मका प्रचार होगा । इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं है और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये हैं जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें । इसमें और भी एक विशेषता यह है कि हिन्दूशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आजकलकी पदार्थ विद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं जिससे आजकलके नवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें । इसकी भाषा सरल, मधुर और गम्भीर है । यह ग्रन्थ चौसठ अध्याय और आठ समुल्लासोंमें पूर्ण होगा और यह वृहत् ग्रन्थ रायल साइजके चार हजार पृष्ठोंसे अधिक होगा तथा बारह खण्डोंमें प्रकाशित होगा । इसी के अन्तिम खण्डमें आध्यात्मिक शब्दकोष भी प्रकाशित करनेका विचार है ।

इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम खण्डका मूल्य २), द्वितीय का१॥), तृतीयका२), चतुर्थका२), पंचमका२) और षष्ठका १॥) है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागज पर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। सातवाँ खण्ड यन्त्रस्थ है।

मैनेजर, निगमागम बुकडीपो,

महामण्डलभवन, जगतगंज, बनारस।

अंग्रेजी भाषाके धर्म्मग्रन्थ।

श्री भारतधर्म्म महामण्डल शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा प्रकाशित सब संहिताओं, गीताओं और दार्शनिक ग्रन्थोंका अंग्रेजी अनुवाद तयार हो रहा है जो क्रमशः प्रकाशित होगा। सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियोंको सनातन धर्म्मका महत्त्व, उसका सर्वजीवहितकारी स्वरूप, उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टितत्त्व, कर्म्मतत्त्व, वर्णाश्रमधर्म्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े बड़े विषय अच्छी तरह समझमें आजावें। इसका नाम, वर्ल्ड्स इटरनल रिलिजन है। इसका मूल्य रायलएडीशनका ५) और साधारणका ३) है। जिल्द बंधी हुई हैं और दोनोंमें सात त्रिवर्ण चित्र भी दिये हैं।

मैनेजर, निगमागम बुकडीपो

महामण्डलभवन, जगतगंज, बनारस।

"The World's Eternal Religion."

A Unique work on Hinduism in one volume, containing 24 Chapters with tri-colour illustrations, glossary, etc. No work has hitherto appeared in English that gives in a suggestive manner the real expositon of the Hindu religion in all its phases. This book has perfectly supplied of long-felt want. The names of the

chapters are as follows:- 1. Foreword, 2. Universal Religion, 3. Classification of Religion, 4. Law of Karma, 5. Worship in all its phases, 6. Practice of Yoga through Mantras, 7. Practice of Yoga through physical exercise, 8. Practice of Yoga through finer force of Nature. 9. Yoga through power of reasoning, 10. The Mystic Circle. 11. Love and Devotion, 12. Planes of Knowledge, 13. Time, space, creation. 14. The Occult world, 15. Evolution and Reincarnation, 16. Hindu Philosophy, 17. The System of castes and stages of Life, 18. Woman's Dharma, 19. Image Worship, 20. The great Sacrifices, 21. Hindu Scriptures, 22. Liberation, 23. Education, 24. Reconciliation of all Religions.--The followers of all religions in the world will profit by the light the work is intended to give. Price cloth bound, superior edition, Rs. 5, postage extra.

Apply to the Manager, Nigamagam Book Depot, Mahamandal Buildings, Jagatganj, Benares.

विविध विषयोंकी पुस्तकें ।

असभ्यरमणी =) अनार्यसमाजरहस्य ≡) अन्त्येष्टिक्रिया ।) आनन्द रघुनन्दन नाटक ॥) आचारप्रबन्ध १) इङ्गलिशग्रामर ।) उपन्यास कुसुम ≡) एकान्तवासी योगी -) कल्किपुराण उर्दू ॥) कार्त्तिकप्रसादकी जीवनी=) काशीमुक्ति विवेक।-)गोवंशचिकित्सा।) गोगीतावली -) ग्वीलेफमेजिनी ।) जैमिनीसूत्र।) तर्कसंग्रह।-)दुर्गेश-नन्दिनी द्वितीय भाग।=)देवपूजन -) देशीकरघा ॥) धनुर्वेद संहिता।) नवीन रत्नाकर भजनावली)। न्याय दर्शन -)पारिवारिक प्रबन्ध १) प्रयाग महात्म्य ॥=) प्रवासी =) बारहमासी -) बालहित -)॥ भक्तसर्वस्व =) भजननोन्द्वाप्रकाश मञ्जरी)॥ भामल मञ्जरी ।) मेगास्थनीजका भारतवर्षीय वर्णन ॥=) मङ्गलदेव पराजय =) रागरत्नाकर २) रामगीता ≡) राशिमाला)॥ वसन्तश्रृङ्गार ≡) वारेन्हेस्टिङ्गकी जीवनी १) वीरबाला ॥।)वैष्णवरहस्य)॥ शारीरिक-भाष्य ।) शास्त्रीजीके दो व्याख्यान ॥=) सारमञ्जरी।)सिद्धान्तकौमुदी ३)सिद्धान्तपटल -) सुजान चरित्र २) सुनारी।) सुबोध व्याकरण ।)

सुश्रुत संस्कृत ३) संध्यावन्दन भाष्य ॥) हनुमज्ज्योतिष ≡) हनुमानचालीसा)। हिन्दी पहिली किताब)॥ क्षत्रियहितैषिणी ~)

नोट—पचीस रुपयोंसे अधिककी पुस्तक खरीदनेवालेको योग्य कमीशन भी दिया जायगा।

शीघ्र छपने योग्य ग्रन्थ। हिन्दी साहित्यकी पुष्टिके अभिप्रायसे तथा धर्म्मप्रचारकी शुभ वासनासे निम्नलिखित ग्रन्थ क्रमशः हिन्दी अनुवाद सहित छापनेको तैयार हैं। यथाः-भाषानुवाद सहित हठयोग संहिता, भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनके भाषाभाष्यका प्रथम खण्ड और सांख्यदर्शनका भाषाभाष्य।

मैनेजर, निगमागम बुक्‌डीपो,
महामण्डलभवन, जगत्‌गंज, बनारस।

श्रीमहामण्डलका शास्त्रप्रकाशविभाग।

यह विभाग बहुत विस्तृत है। अपूर्व्व संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजीकी पुस्तकें काशी प्रधान कार्य्यालय (जगत्‌गंज) में मिलती हैं। बंगला सिरीज कलकत्ता दफ्तर(६२बहूबाजारस्ट्रीट) में और उर्दू सिरीज फीरोजपुर (पञ्जाब) दफ्तर में मिलती हैं और इसी प्रकार अन्यान्य प्रान्तीय कार्य्यालयोंमें प्रान्तीय भाषाओंके ग्रन्थोंका प्रबन्ध हो रहा है।

सेक्रेटरी
श्रीभारतधर्म्म महामण्डल,
जगत्‌गंज बनारस।

श्रीमहामण्डलस्थ उपदेशक-महाविद्यालय।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्यालय काशी में साधु और गृहस्थ धर्म्मवक्ता प्रस्तुत करनेके अर्थ श्रीमहामण्डल-उपदेशक महाविद्यालय नामक विद्यालय स्थापित हुआ है। जो साधुगण दार्शनिक और धर्म्मसम्बन्धी ज्ञान लाभ करके अपने साधु-जीवनको कृतकृत्य करना चाहें और जो विद्वान् गृहस्थ धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्म्मप्रचार द्वारा देशकी सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्यालय,
जगत्‌गंज, बनारस (छावनी)।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल
में
नियमित धर्म्म चर्चा ।

श्रीभारतधर्म महामण्डल धर्मपुरुषार्थ में जैसा अग्रसर हो रहा है, सर्वत्र प्रसिद्ध है । मण्डल के अनेक पुरुषार्थों में 'उपदेशक महा-विद्यालय' की स्थापना भी गणना करने योग्य है । अच्छे धार्म्मिक वक्ता इसमें निर्माण हुए, होते हैं और होते रहेंगे ऐसा इसका प्रबन्ध हुआ है । अब इसमें दैनिक पाठ्यक्रम के अतिरिक्त यह भी प्रबन्ध हुआ है कि रात्रि के समय महीने में दस दिन व्याख्यान शिक्षा, दस दिन शास्त्रार्थ शिक्षा और दस दिन सङ्गीत शिक्षा भी दी जाया करे। वक्तृता के लिये संगीत का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है और इस पञ्चम वेदका (शुद्ध सङ्गीत का) लोप हो रहा है। इस कारण व्याख्यान और शास्त्रार्थ शिक्षा के साथ सङ्गीत शिक्षा का भी समावेश किया गया है । सर्व साधारण भी इस धर्म चर्चा का यथा समय उपस्थित होकर लाभ उठा सकते हैं ।

निवेदक

सेक्रटरी महामण्डल,

जगत्‌गंज बनारस ।

हिन्दूधार्मिक विश्वविद्यालय ।
(श्री शारदामण्डल)

हिन्दू जातिकी विराट् धर्म्मसभा श्रीभारतधर्म्म महामण्डलका यह विद्यादान विभाग है। वस्तुतः हिन्दूजातिके पुनरभ्युदय और हिन्दूधर्म्मकी शिक्षा सारे भारतवर्षमें फैलानेके लिये यह विश्व-विद्यालय स्थापित हुआ है। इसके प्रधानतः निम्न लिखित पाँच कार्य विभाग हैं ।

(१) श्री उपदेशक महाविद्यालय (हिन्दू कालेज ओफ डिवि-निटी) इस महाविद्यालयके द्वारा योग्य धर्म्मशिक्षक और धर्मो-पदेशक तयार किये जाते हैं । अंग्रेजी भाषाके बी. ए. पास अथवा संस्कृत भाषा के शास्त्री आचार्य्य आदि परीक्षाओंकी योग्यता रखने

वाले पण्डित ही छात्र रूपसे इस महाविद्यालयमें भरती किये जाते हैं। छात्रवृत्ति २५) माहवार तक दी जाती है।

(२) धर्म्मशिक्षाविभाग। इस विभागके द्वारा भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमें ऊपर लिखित महाविद्यालयमें परीक्षोत्तीर्ण एक एक पण्डित स्थायीरूपसे नियुक्त करके उक्त नगरोंके स्कूल, कालेज और पाठशालाओंमें हिन्दूधर्म्मकी धार्मिक शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया जाता है। वे पण्डितगण उन नगरोंमें सनातनधर्मका प्रचार भी करते रहते हैं। ऐसा प्रबन्ध किया जा रहा है कि जिससे महामण्डलके प्रयत्नसे सब बड़े बड़े नगरों में इस प्रकार धर्म्मकेन्द्र स्थापित हों और वहाँ मासिक सहायता भी श्री महामण्डलकी ओरसे दी जाय।

(३) श्री आर्यमहिलामहाविद्यालय भी इसी शास्त्रामण्डलका अंग समझा जायगा और इस महाविद्यालयमें उच्च जातिकी विधवाओंके पालनपोषणका पूरा प्रबन्ध करके उनको योग्य धर्मोपदेशिका, शिक्षयित्री और गवर्नेस आदिके काम करनेके उपयोगी बनाया जायगा।

(४) सर्व्वधर्म्मसदन (हाल आफ आल रिलिजन्स) इस नामसे यूरोप-महायुद्धके स्मारक रूपसे एक संस्था स्थापित करनेका प्रबन्ध हो रहा है। यह संस्था श्रीमहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय तथा उपदेशक महाविद्यालयके निकट ही स्थापित होगी। इस संस्थाके एक ओर सनातन धर्म्मके अतिरिक्त सब प्रधान २ धर्म्ममतोंके उपासनालय रहेंगे जिनमें उक्त धर्मोंके जाननेवाले एक एक विद्वान् रहेंगे। दूसरी ओर सनातनधर्म्मके पञ्चोपासनाके पाँच देवस्थान और लीलाविग्रह उपासना आदि देवमन्दिर रहेंगे। इसी संस्थामें एक बृहत् पुस्तकालय रहेगा कि जिसमें पृथिवी भरके सब धर्म्ममतोंके धर्म्मग्रन्थ रक्खे जायंगे और इसी संस्थासे संश्लिष्ट एक व्याख्यानालय और शिक्षालय (हाल) रहेगा जिसमें उक्त विभिन्न धर्मोंके विद्वान् तथा सनातन धर्मके विद्वान्गण यथाक्रम व्याख्यानादि देकर धर्म्मसम्बन्धीय अनुसन्धान तथा धर्म्मशिक्षा-कार्य्यकी सहायता करेंगे। यदि पृथिवीके अन्य देशोंसे कोई विद्वान् काशीमें आकर इस सर्व्वधर्म्मसदनमें दार्शनिक शिक्षा लाभ करना चाहेगा तो उसका भी प्रबन्ध रहेगा।

(५) शास्त्र प्रकाश विभाग। इस विभागका कार्य स्पष्टही है। इस विभागसे धर्मशिक्षा देनेके उपयोगी नाना भाषाओंकी पुस्तकें तथा सनातनधर्मकी सब उपयोगी मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और होंगी।

इस प्रकारसे पाँच कार्य्यविभाग और संस्थाओंमें विभक्त होकर श्री शारदामण्डल सनातनधर्मावलम्बियोंकी सेवा और उन्नति करनेमें प्रवृत्त रहेगा।

प्रधान मंत्री

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल

प्रधान कार्यालय, बनारस।

श्रीमहामण्डलके सभ्योंको विशेष सुविधा।

हिन्दू समाजकी एकता और सहायताके लिये विराट् आयोजन।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल हिन्दू जातिकी अद्वितीय धर्ममहासभा और हिन्दू समाजकी उन्नति करने वाली भारतवर्षके सकल प्रान्त व्यापी संस्था है। श्रीमहामण्डलके सभ्य महोदयोंको केवल धर्म्म शिक्षा देना ही इसका लक्ष्य नहीं है; किन्तु हिन्दू समाजकी उन्नति, हिन्दूसमाजकी दृढ़ता और हिन्दू समाजमें पारस्परिक प्रेम और सहायताकी वृद्धि करना भी इसका प्रधान लक्ष्य है इस कारण निम्नलिखित नियम श्रीमहामण्डलकी प्रबन्ध- कारिणी सभाने बनाये हैं। इन नियमोंके अनुसार जितने अधिक संख्यक सभ्य महामण्डलमें सिम्मिलित होंगे उतनी ही अधिक सहायता महामण्डलके सभ्य महोदयोंको मिल सकेगी। ये नियम ऐसे सुगम और लोकहितकर बनाये गये हैं कि श्रीमहामण्डलके जो सभ्य होंगे उनके परिवारको बड़ी भारी एककालिक दानकी सहायता प्राप्त हो सकेगी। वर्त्तमान हिन्दूसमाज जिस प्रकार दरिद्र होगया है उसके अनुसार श्रीमहामण्डलके ये नियम हिन्दू समाजके लिये बहुत ही हितकारी हैं इसमें सन्देह नहीं।

श्रीमहामण्डलके मुखपत्रसम्बन्धी उपनियम ।

(१) धर्मशिक्षाप्रचार, सनातनधर्मचर्चा, सामाजिकउन्नति, सद्विद्याविस्तार, श्रीमहामण्डलके कार्य्योंके समाचारोंकी प्रसिद्धि और सभ्योंको यथासम्भव सहायता पहुँचाना आदि लक्ष्य रखकर श्रीमहामण्डलके प्रधान कार्य्यालय द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों-में प्रचलित देशभाषाओंमें मासिकपत्र नियमितरूपसे प्रचार किये जायँगे ।

(२) अभी केवल हिन्दी और अँगरेजी-इन दो भाषाओंके दो मासिकपत्र प्रधान कार्य्यालयसे प्रकाशित हो रहे हैं । यदि इन नियमोंके अनुसार कार्य्य करने पर विशेष सफलता और सभ्योंकी विशेष इच्छा पाई जायगी तो भारतके विभिन्न प्रान्तोंकी देश भाषाओंमें भी क्रमशः मासिकपत्र प्रकाशित करनेका विचार रक्खा गया है । इन मासिकपत्रोंमें से प्रत्येक मेम्बरको एक एक मासिक-पत्र, जो वे चाहेंगे, बिना मूल्य दिया जायगा । कमसे कम दो हजार सभ्य महोदयगण जिस भाषाका मासिक पत्र चाहेंगे, उसी भाषामें मासिकपत्र प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया जायगा, परन्तु जबतक उस भाषाका मासिकपत्र प्रकाशित न हो तब तक श्रीम-हामण्डलका हिन्दी अथवा अंगरेजीका मासिकपत्र बिना मूल्य दिया जायगा ।

(३) श्रीमहामण्डलके साधारण सभ्योंको वार्षिक दो रुपये चन्दा देने पर इन नियमोंके अनुसार सब सुविधाएँ प्राप्त होंगी । श्रीमहामण्डलके अन्य प्रकारके सभ्य जो धर्म्मोन्नति और हिन्दू-समाजकी सहायताके विचारसे अथवा अपनी सुविधाके विचारसे इस विभागमें स्वतन्त्र रीतिसे कमसे कम २ दो रुपये वार्षिक नियमित चन्दा देंगे वे भी इस कार्य्य विभागकी सब सुविधाएँ प्राप्त कर सकेंगे ।

(४) इस विभागके रजिस्टरदर्ज सभ्योंको श्रीमहामण्डलके अन्य प्रकारके सभ्योंकी रीतिपर श्रीमहामण्डलसे सम्बन्धयुक्त सब पुस्तकादि अपेक्षाकृत स्वल्प मूल्य पर मिला करेंगी ।

समाजहितकारी कोष ।

(यह कोष श्रीमहामण्डलके सब प्रकारके सभ्योंके—जो इसमें

सम्मिलित होंगे—निर्वाचित व्यक्तियोंको आर्थिक सहायताके लिये खोला गया है)

(५) जो सभ्य नियमित प्रतिवर्ष चन्दा देते रहेंगे उनके देहान्त होने पर जिनका नाम वे दर्ज करा जायंगे, श्रीमहामण्डलके इस कोष द्वारा उनको आर्थिक सहायता मिलेगी।

(६) जो मेम्बर कमसे कम तीन वर्ष तक मेम्बर रहकर लोकान्तरित हुए हों, केवल उन्हींके निर्वाचित व्यक्तियोंको इस समाजहितकारी कोषकी सहायता प्राप्त होगी, अन्यथा नहीं दी जायगी।

(७) यदि कोई सभ्य महोदय अपने निर्वाचित व्यक्तिके नामको श्रीमहामण्डलप्रधानकार्यालयके रजिस्टरमें परिवर्त्तन कराना चाहेंगे तो ऐसा परिवर्त्तन एकवार विना किसी व्ययके किया जायगा। उसके बाद वैसा परिवर्तन पुनः कराना चाहें तो १) भेजकर परिवर्तन करा सकेंगे।

(८) इस विभागमें साधारण सभ्यों और इस कोषके सहायक अन्यान्य सभ्योंकी ओरसे प्रतिवर्ष जो आमदनी होगी उसका आधा अंश श्रीमहामण्डलके छपाई-विभागको मासिक पत्रोंकी छपाई और प्रकाशन आदि कार्य्यके लिये दिया जायगा। बाकी आधा रुपया एक स्वतन्त्र कोषमें रक्खा जायगा जिस कोषका नाम " समाजहितकारी कोष " होगा।

(९) " समाजहित कारी कोष " का रुपया बैंक ऑफ बंगाल अथवा ऐसे ही विश्वस्त बैंकमें रक्खा जायगा।

(१०) इस कोषके प्रबन्धके लिये एक खास कमेटी रहेगी।

(११) इस कोषकी आमदनीका आधा रुपया प्रतिवर्ष इस कोषके सहायक जिन मेम्बरों की मृत्यु होगी, उनके निर्वाचित व्यक्तियोंमें समानरूपसे बाँट दिया जायगा।

(१२) इस कोषमें बाकी आधे रुपयोंके जमा रखनेसे जो लाभ होगा, उससे श्रीमहामण्डलके कार्यकर्ताओं तथा मेम्बरोंके क्लेशका विशेष कारण उपस्थित होने पर उन क्लेशोंको दूर करनेके लिये कमेटी व्यय कर सकेगी।

(१३) किसी मेम्बरकी मृत्यु होने पर वह मेम्बर यदि किसी महामण्डलकी शाखासभाका सभ्य हो अथवा किसी शाखासभाके

निकटवर्ती स्थानमें रहने वाला हो तो उसके निर्वाचित व्यक्तिका फर्ज होगा कि वह उक्त शाखासभाकी कमेटीके मन्तव्यकी नकल श्रीमहामण्डल प्रधान कार्य्यालयमें भिजवावे। इस प्रकारसे शाखा सभाके मन्तव्यकी नकल आने पर कमेटी समाजहितकारी कोषसे सहायता देनेके विषयमें निश्चय करेगी।

(१४) जहाँ कहीं सभ्योंको इस प्रकारकी शाखासभाकी सहायता नहीं मिल सकती है या जहाँ कहीं निकट शाखासभा नहीं है ऐसी दशामें उस प्रान्तके श्रीमहामण्डलके प्रतिनिधियोंमेंसे किसीके अथवा किसी देशी रजवाड़ोंमें हो तो उस दर्बार के प्रधान कर्म्मचारीका सार्टिफिकेट मिलने पर सहायता देनेका प्रबन्ध किया जायगा।

(१५) यदि कमेटी उचित समझेगी तो वाला २ खबर मंगाकर सहायताका प्रबन्ध करेगी, जिससे कार्य्यमें शीघ्रता हो।

अन्यान्य नियम।

(१६) महामण्डलके अन्य प्रकारके सभ्योंमेंसे जो महाशय हिन्दूसमाजकी उन्नति और दरिद्रोंकी सहायताके विचारसे इस कोषमें कमसे कम २) दो रुपये सालाना सहायता करने पर भी इस फण्ड से फायदा उठाना नहीं चाहेंगे वे इस कोषके परिपोषक समझे जायंगे और उनकी नामावली धन्यवादसहित प्रकाशित की जायगी।

(१७) हर एक साधारण मेम्बरको-चाहे स्त्री हो या पुरुष—प्रधान कार्यालयसे एक प्रमाणपत्र—जिसपर पञ्चदेवताओंकी मूर्ति और कार्यालयकी मुहर होगी—साधारण मेम्बरके प्रमाणरूपसे दिया जायगा।

(१८) इस विभागमें जो चन्दा देंगे उनका नाम नम्बरसहित हर वर्ष रसीदके तौर पर वे जिस भाषाका मासिकपत्र लेंगे उसमें छापा जायगा। यदि गलतीसे किसीका नाम न छपे तो उनका फर्ज होगा कि प्रधान कार्यालयमें पत्र भेजकर अपना नाम छपवावें क्योंकि यह नाम छपना ही रसीद समझी जायगी।

(१९) प्रतिवर्ष का चन्दा २) मेम्बर महाशयों को जनवरी महीनेमें आगामी भेज देना होगा। यदि किसी कारण विशेषसे

जनवरीके अन्त तक रुपया न आवे तो और एक मास अर्थात् फरवरी मास तक अवकाश दिया जायगा और इसके बाद अर्थात् मार्च महीनेमें रुपया न आने से मेम्बर महाशयका नाम काट दिया जायगा और फिर वे इस समाजहितकारी कोषसे लाभ नहीं उठा सकेंगे।

(२०) मेम्बर महाशयका पूर्व नियम के अनुसार नाम कट जानेपर यदि कोई असाधारण कारण दिखाकर वे अपना हक्क साबित रखना चाहेंगे तो कमेटीको इस विषयमें विचार करने का अधिकार मई मास तक रहेगा और यदि उनका नाम रजिष्टरमें पुनः दर्ज किया जायगा तो उन्हें ।) हर्जाना समेत चन्दा अर्थात् २।) देकर नाम दर्ज करा लेना होगा।

(२१) वर्षके अन्दर जब कभी कोई नये मेम्बर होंगे तो उनको उस सालका पूरा चन्दा देना होगा। वर्षारम्भ जनवरी से समझा जायगा।

(२२) हर सालके मार्चमें परलोकगत मेम्बरोंके निर्वाचित व्यक्तियोंको 'समाजहितकारी कोष' की गतवर्षकी सहायता बांटी जायगी; परन्तु नं. १२ के नियमके अनुसार सहायताके बांटनेका अधिकार कमेटीको सालभर तक रहेगा।

(२३) इन नियमोंके घटाने-बढ़ाने का अधिकार महामण्डल को रहेगा।

(२४) इस कोष की सहायता 'श्रीभारतधर्म महामण्डल, प्रधान कार्यालय, काशी' से ही दी जायगी।

सेक्रेटरी,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल,
जगत्गंज, बनारस।

श्रीविश्वनाथ-अन्नपूर्णा-दानभण्डार।

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशीमें दीनदुःखियोंके क्लेशनिवारणार्थ यह सभा स्थापित की गई है। इस सभाके द्वारा अतिविस्तृत रीतिपर शास्त्र प्रकाशनका कार्य्य प्रारम्भ किया गया है। इस सभाके द्वारा धर्म्मपुस्तिका पुस्तकादि यथासम्भव विना मूल्य वितरण करनेका भी विचार रक्खा गयाहै। इस दानभ-

एडारके द्वारा महामर.........रा प्रका...त तत्त्वबोध, साधुओंका कर्तव्य, धर्म्म और धर्म्माङ्ग,दानधर्म्म,नारी धर्म्म, महामण्डलकी आवश्यकता आदि कई एक हिन्दीभाषाके धर्मग्रन्थ और अंग्रेजी भाषाके कईएक ट्रैक्स विना मूल्य योग्य पात्रोंको बांटे जाते हैं। पत्राचार करनेपर विदित हो सकेगा। शास्त्र प्रकाशनकी आमदनी इसी दानभण्डारमें दीनदुःखियोंके दुःखमोचनार्थ व्यय की जाती है। इस सभामें जो दान करना चाहें या किसी प्रकार पत्राचार करना चाहें वे निम्न लिखित पते पर पत्र भेजें।

सेक्रेटरी, श्रीविश्वनाथ-अन्नपूर्णा-दानभण्डार,
श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, प्रधान कार्य्यालय,
जगतगंज, बनारस (छावनी)

आर्य्यमहिलाके नियम।

१—श्रीआर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की मुखपत्रिकाके रूपमें आर्य्यमहिला प्रकाशित होती है।

२—महापरिषद्की सब प्रकारकी सभ्या महोदयाओं और सभ्य महोदयोंको यह पत्रिका विना मूल्य दीजाती है। अन्य ग्राहकोंको ६)वार्षिक अग्रिम देने पर प्राप्त होती है। प्रति संख्याका मूल्य १॥)है।

३-पुस्तकालयों (पब्लिक लाइब्रेरियों) वाचनालयों (रीडिंग रूमों) और कन्यापाठशालाओंको केवल ३) वार्षिकमें ही दी जाती है।

४-किसी लेखको घटाने-बढ़ाने वा प्रकाशित करने न करनेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादिकाकी है।

५-योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको नियत पारितोषिक दिया जाता है और विशेष योग्य लेखकों तथा लेखिकाओंको अन्यान्य प्रकारसे भी सम्मानित किया जाता है।

६—हिन्दी लिखनेमें असमर्थ मौलिक लेखक लेखिकाओंके लेखोंका अनुवाद कार्यालयसे कराकर छापा जाता है।

७-माननीया श्रीमती सम्पादिकाजीने काशीके विद्वानोंकी एक समिति स्थापित की है; जो पुस्तकें आदि समालोचनार्थ कार्यालयमें पहुंचेंगी, उनपर वह समिति विचार करेगी। जो पुस्तकें आदि योग्य समझी जायेंगी उनके नाम, पता और विषय आदि आर्य-महिलामें प्रकाशित कर दिये जायंगे।

८—समालोचनार्थ पुस्तकें, लेख, परिवर्तनकी पत्र-पत्रिकाएँ, कार्य्यालय-सम्बन्धी पत्र, छपने योग्य विज्ञापन और रुपया तथा महापरिषत्सम्बन्धी पत्र आदि सब निम्न लिखित पते पर आने चाहियें।

कार्य्याध्यक्ष, आर्यमहिला तथा महापरिषत्कार्यालय,

श्रीमहामण्डल भवन, जगत्गञ्ज, बनारस।

आर्यमहिला महाविद्यालय।

इस नामका एक महाविद्यालय (कालेज) जिसमें विधवाश्रम भी शामिल रहेगा श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद् नामक सभाके द्वारा स्थापित हुआ है जिसमें सत्कुलोद्भव उच्च जातिकी विधवाएँ मासिक १५) से २०) तक वृत्ति देकर भरती की जाती हैं और उनको योग्य शिक्षा देकर हिन्दू धर्म्मकी उपदेशिका, शिक्षयित्री आदि रूपसे प्रस्तुत किया जाता है। भविष्यत् जीविकाका उनके लिये यथायोग्य प्रबन्ध भी किया जाता है। इस विषयमें यदि कुछ अधिक जानना चाहें तो निम्न लिखित पते पर पत्र व्यवहार करें।

प्रधानाध्यापक

आर्यमहिला महाविद्यालय

महामण्डल भवन जगत्गंज बनारस।

एजन्टोंकी आवश्यकता।

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल और आर्य्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्के मेम्बरसंग्रह और पुस्तकविक्रय आदिके लिये भारतवर्षके प्रत्येक नगरमें एजण्टोंकी जरूरत है। एजन्टोंको अच्छा पारितोषिक दिया जायगा। इस विषयके नियम श्रीमहामण्डल प्रधान कार्यालयमें पत्र भेजनेसे मिलेंगे।

सेक्रेटरी

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल

जगत्गंज बनारस

भारतधर्म्म प्रेस।

मनुष्यों की सर्वाङ्गीण उन्नति लिखनेपढने से होती है। पहिले समय में शिक्षा-प्रचारका कोई सुलभ साधन नहीं था; परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा-वृद्धिके जितने साधन उपलब्ध हैं, उनमें 'प्रेस' सब से बढ़कर है।

सनातन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये भी इस साधन का अवलम्बन करना उचित जानकर श्री भारतधर्म महामण्डल ने निजका

भारतधर्म्म नामक प्रेस।

खोल दिया है। इसमें हिन्दी, अँग्रेजी और उर्दू का सब प्रकार का काम उत्तमता से होता है। पुस्तक, पत्रिकाएँ, हेंडबिल, लेटरपेपर, वालपोस्टर्स, चेक, बिल, हुण्डी, रसीदें, रजिस्टर फार्म आदि छपवाकर इस प्रेस की छपाई की सुन्दरता का अनुभव कीजिये।

पत्र व्यवहार करने का पताः—

मैनेजर

भारतधर्म्म प्रेस

महामण्डल भवन

जगतगंज, बनारस।

हितचिन्तक प्रेस, रामघाट, काशी में मुद्रित।

श्रीआर्यमहिला-हितकारिणी महापरिषद् ।

कार्य्यसम्पादिका:—भारतधर्मलक्ष्मी खैरीगढ़राज्येश्वरी महारानी सुरथ कुमारी देवी, O. B. E. एवं हर हाईनेस धर्म्म-सावित्री महारानी शिवाकुमारी देवी, नरसिंहगढ़ ।

भारतवर्षकी प्रतिष्ठित रानी-महारानियों तथा विदुषी भद्र महिलाओंके द्वारा, श्रीभारतधर्म-महामण्डलकी निरीक्षकतामें, आर्यमाताओंकी उन्नतिकी सदिच्छासे यह महापरिषद् श्रीकाशीपुरीमें स्थापित की गई है । इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं:—

(क) आर्यमहिलाओंकी उन्नतिके लिये नियमित कार्यव्यवस्थाका स्थापन (ख) श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित पवित्र नारी-धर्मका प्रचार (ग) स्वधर्मानुकूल स्त्रीशिक्षाका प्रचार (घ) पारस्परिक प्रेम स्थापित कर हिन्दूसतियोंमें एकताकी उत्पत्ति (ङ) सामाजिक कुरीतियोंका संशोधन और (च) हिन्दीकी उन्नति करना तथा (छ) इन्हीं उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये अन्यान्य आवश्यकीय कार्य करना ।

परिषद्के विशेष नियम—:—१ म—इसकी सब प्रकारकी सभ्याओंको इसकी मुखपत्रिका आर्यमहिला मुफ्त मिलेगी । २य—स्त्रियाँ ही सभ्याएँ हो सकेंगी । ३य—यदि पुरुष भी परिषद्की किसी तरहकी सहायता करें तो वे पृष्ठपोषक समझे जायँगे और उनको भी पत्रिका मुफ्त मिला करेगी । ४ र्थ—परिषद् की चार प्रकारकी सभ्याओंके ये नियम हैं:—

(क) कमसे कम १५०) एकबार देनेपर "आजीवन-सभ्या" (ख) १०००) एक ही बार वा प्रतिमास १०) देने पर "संरक्षक-सभ्या" (ग) १२) वार्षिक देने पर "सहायक-सभ्या" और (घ) ५) वार्षिक देनेपर वा असमर्थ होनेसे ३) ही वार्षिक देने पर "सहयोगिसभ्या" आर्यमहिला मात्र बन सकती हैं ।

पत्रिका-सम्बन्धी तथा महापरिषत्सम्बन्धी सब तरहके पत्रव्यवहार करनेका यह पता है:—

महोपदेशक-पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री
कार्याध्यक्ष आर्यमहिला
तथा
आर्यमहिला हितकारिणी महापरिषत्कार्यालय,
श्रीमहामण्डल-भवन जगत्गंज, बनारस ।

THE ARYAN BUREAU OF SEERS & SAVANTS,

ESTABLISHED UNDER THE DISTINGUISHED PATRONAGE OF THE LEADERS OF SRI BHARAT DHARMA MAHAMANDAL.

A Committee (Bureau) of this name has been started with the object, amongst others, of establishing a connecting link, through the vehicle of correspondence, with those Scholars and Literary Societies that take an interest in questions of Theology, Hindu Philosophy and Sanskrit Literature all over the civilised world.

To fulfil the above objects the Bureau intends to take up the following:—

1. To receive and answer questions through *bona fide* correspondence regarding Hindu Religion and Science, Codes, Practical Yoga, Vaidic Philosophy and General Sanskrit Literature.

2. To exhibit to the enlightened world the catholicity of the Vaidic doctrines, and its fostering agency as universal helper towards moral and spiritual amelioration of nations.

3. To render mutual help as regards comparative research in Science, Philosophy and Literatures both Oriental and Occidental.

4. To welcome such suggestions as may emanate from learned source & all over the world conducive to the improvement and benefit of humanity.

5. And to do such other things as may lead to the fulfilment of the above objects or any of them.

RULES OF THE SOCIETY.

1. There are to be two classes of Members, General & Special.

2. The Memberships are to be all honorary.

3. Those who will sympathise with the object, and enlist their names and addresses in the Register of the Bureau as Co-operators will be considered as General Members.

4. Special members are to be those who shall be qualified to answer points of their respective religions.

5. The Membership of the Bureau will be irrespective of caste, creed and nationality.

6. The spiritual questions will be responded to through correspondence as well as in Debate Meetings held in the office of the Bureau on dates fixed for the purpose.

7. There is to be a Secretary and an Assistant Secretary to be appointed by the Founder of the Bureau (both posts honorary).

8. All the books, tracts and leaflets that will be published concerning the Bureau will be forwarded free to all the Members of the Bureau.

All correspondence to be addressed to—

SWAMI DAYANAND, SECRETARY,

Aryan Bureau of Seers & Savants.

C/o Sri Mahamandal Office, BENARES CITY (India.)

N.B.—Oriental scholars, all over the world, are invited to send their names and addresses to facilitate mutual communications and despatch of necessary Papers.